तीसरा अध्याय

कर्मों का परित्याग कभी भी संभव नहीं है । कोई भी व्यक्ति क्षणभर भी कर्म किये बिना रह नहीं सकता है । प्रकृति के गुण मानव को प्रत्येक क्षण कर्म करने के लिये बाध्य करते रहते हैं । केवल कर्म न करने से व्यक्ति कर्मों के बंधन से नहीं छूट सकता । वह मनुष्य पाखंडी है जो मन में तो कर्मों को स्मरण करता रहता है और कर्म करने वाली इन्द्रियों को बाहर से रोक लेता है । वस्तुतः वही मानव सच्चा है जो कर्मेन्द्रियों से कर्म तो करता रहता है परन्तु अपने को उन कर्मों में आसक्त नहीं होने देता । अतः हमें कर्म करते रहना चाहिये । बुद्धिमत्तापूर्ण कर्म, अनासक्त भाव से निर्भयता के साथ, कर्मयोग से, भक्तिभाव से ।

व्यक्ति को कर्म करना ही पड़ता है किन्तु उसे आसक्त नहीं होना चाहिये । कर्म का परित्याग ज्ञानी को भी नहीं करना चाहिये । कर्म ही से महाराजा जनक जैसे ज्ञानी सिद्धि को प्राप्त हुये थे । श्रेष्ठ मानव को कभी लोक-मर्यादाओं को नहीं छोड़ना चाहिये । छोटे व्यक्ति अपने से बड़े व्यक्तियों का ही अनुसरण किया करते हैं । व्यक्ति को अपने धर्म का परित्याग कभी नहीं करना चाहिये । दूसरों का धर्म चाहे कितना भी श्रेष्ठ हो परन्तु उसे नहीं अपनाना चाहिये । काम एवं क्रोध व्यक्ति को पाप के लिये प्रेरित करते हैं । ये दोनों ही उसके शत्रु हैं । सारा संसार इनसे युक्त है । जिस प्रकार धुएं से अग्नि एवं मैला से दर्पण ढका रहता है उसी प्रकार जेर से गर्भ ढका रहता है वैसे ही काम से ज्ञान ढका रहता है । दूषित कामना प्रत्येक मानव के हृदय को दूषित करती है । इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि इस कामना का आधार हैं । अतः व्यक्ति का कल्याण इसी बात में है कि मन को अपने वश में रखे । मन चलायमान है, चंचल है । राग व द्वेष दोनों ही आत्मानुभूति के कल्याणकारी मार्ग में विघ्न डालने वाले महान् शत्रु हैं । इतना ही नहीं ये दोनों ही इतने प्रबल शत्रु हैं कि ज्ञानी लोग भी इन द्वन्द्वों में फंस जाते हैं ।

1. ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ।।

बता मुझको जब्बारे ग़ैस-ओ-दराज़,
अमल से अगर इल्म है सरफ़राज़ ।
तो रक्खा नही मुझको आजाद क्यों ?
मुझे कुश्त-ओ-खू का है अरशाद क्यों ?

शब्दार्थ – ज्यायसी–श्रेष्ठ; चेत्–यदि; कर्मणः–कर्म से; ते–तुझे; मता–मानी है; जनार्दन–हे कृष्ण; तत्–तो; किं–क्यों; कर्मणि–कर्म में; घोरे–भयंकर में; माम्–मुझे; नियोजयसि–जोड़ता है, केशव–हे कृष्ण ।

जब्बारे–शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले; ग़ैस-ओ-दराज़–लम्बे बालों वाले; अमल–कर्म; इल्म–ज्ञान; सरफ़राज–श्रेष्ठ; कुश्त-ओ खूँ–युद्ध करने का; अरशाद–आदेश ।

भावार्थ – हे कृष्ण ! यदि आपको कर्म की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ है, तो हे कृष्ण ! तुम मुझे युद्ध रूपी भयंकर कर्म में क्यों लगा रहे हो ?

2. व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ।।

बज़ाहिर नहीं बात सुलझी हुई,
मेरी अक़्ल है इससे उलझी हुई ।
मुझे बात कतई बता दीजिये,
भलाई की राह पर चला दीजिये ।।

शब्दार्थ – व्यामिश्रेण–शब्दों में, मिश्रित; इव–जैसे; वाक्येन्–शब्दों में; बुद्धिम्–बुद्धि को; मोहयसि–भ्रमित करता है; इव–मानों; मे–मेरी; तत्–उस; एकम्–एक को; वद्–बता; निश्चित्य–निश्चित कर के; येन–जिससे; श्रेयः–कल्याण को; अहम्–मैं; अवाप्नुयाम्–पा सकूँ ।

बज़ाहिर–प्रगट रूप में ।

भावार्थ – इस मिली-जुली बात से मेरी बुद्धि भ्रमित-सी हो रही है । निश्चित करके मुझे एक बात बताओ जिससे मैं कल्याण को प्राप्त कर सकूँ ।

3. **लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।**
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।

सुन ऐ मेरे मासूम अर्जुन ज़रा,
दिये रास्ते मैंने दोनों बता।
है ज्ञान उनका रस्ता जो ज्ञानी हैं लोग,
जो योगी हैं धर्म उनका है कर्मयोग।।

शब्दार्थ – लोके–संसार में; अस्मिन्–इसमें; द्विविधा–दो प्रकार की; निष्ठाः–मार्ग; पुरा–पहले; प्रोक्ता–कही है; मया–मैंने; अनघ–हे निष्पाप अर्जुन; ज्ञानयोगेन–ज्ञानयोग से; सांख्यानाम्–सांख्य दृष्टि वालों की; कर्मयोगेन–कर्मयोग से; योगिनाम्–भक्तों का। मासूम–अबोध।

भावार्थ – हे निष्पाप अर्जुन! मैंने पहले यह बतलाया है कि इस संसार में आत्म साक्षातकार का प्रयत्न करने वाले दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं। कुछ इसे ज्ञानयोग द्वारा समझने का प्रयत्न करते हैं और कुछ कर्मयोग द्वारा।

4. **न कर्मणामनारम्भान्नेष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।**
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।

कि इन्साँ कभी तर्क-ए आमाल से,
रिहा हो न कर्मों के जंजाल से।
फ़कत तर्क-ए-आमाल से हे मुहाल,
कि हासिल किसी की हो औज-ए कमाल।।

शब्दार्थ – कर्मणाम्–कर्मों के; अनारम्भात्–न करने से; नैष्कर्म्यम्–निष्कर्मता को; अश्नुते–प्राप्त होता है; च–और; संन्यसनात्–छोड़ देने से; एव–ही ; सिद्धिम्–सफलता को; सम्–अच्छी तरह; अधिगच्छति–प्राप्त होता है।

तर्क-ए आमाल–कर्मत्याग; रिहा–स्वतंत्र; फ़कत–केवलमात्र; मुहाल–कठिन; हासिल–प्राप्त; औज़-ए-कमाल–सिद्धि।

भावार्थ – कर्म न करने से कोई पुरुष निष्कामता को प्राप्त नहीं करता और न केवल प्रारम्भ किया हुआ कर्म छोड़ देने से सिद्धि प्राप्त होती है।

5. **न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।**
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।

जहाँ में न देखोगे तुम एक पल,
कि कोई भी फ़ारग है और बे-अमल।
सभी काम करने पे मामूर हैं,
गुणों ही से फ़ितरत के मजबूर हैं।।

शब्दार्थ – हि–निश्चय से; कश्चित्–कोई; क्षणम्–क्षणमात्र; अपि–भी; जातु–कभी; तिष्ठति–रहता है; अकर्मकृत्–कर्म न करने वाला; कार्यते–कराता है; हि–निश्चय से; अवशः–विवश हुआ; सर्वः–सब; प्रकृतिजैः–स्वभाव से उत्पन्न हुओं द्वारा; गुणैः–गुणों द्वारा।

बे-अमल–कर्म रहित; मामूर–तत्पर; फ़ितरत–स्वभाव।

भावार्थ – कोई व्यक्ति क्षणभर भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। व्यक्ति अपने स्वभाव से पैदा होने वाले गुणों द्वारा विवश बना दिया जाता है और वे उससे कर्म कराया ही करते हैं।

6. **कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।**
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।

जो अशिया से रोके कवाय-ए अमल,
मगर दिल से ख़्वाइश न जाये निकल।
जो अशिया की उलफ़त में सरशार है,
परागन्दा दिल है वो मक्कार है।।

शब्दार्थ– कमेन्द्रियाणि–कर्मेन्द्रियों को; संयम्य–रोककर; यः–जो; आस्ते–रहता है; मनसा–मन से; स्मरन्–सोचता हुआ; इन्द्रियार्थान्– इन्द्रियों के विषयों का; विमूढात्माः–मूढ बुद्धिवाला; मिथ्याचारः–व्यर्थ आचारवाला; सः–वह; उच्यते–कहाता है।

अशिया–इन्द्रियों के विषय; कवाए-ए अमल–कर्मेन्द्रियाँ; उलफ़त–मुहब्बत; सरशार–मदहोश; परागन्दा–दूषित; मक्कार–दम्भी।

भावार्थ – जो मूढ़ व्यक्ति इन्द्रियों को हठपूर्वक ऊपर से रोक कर मन से इन्द्रियों के विषय का चिन्तन करता है, वह मिथ्याचारी है और अनासक्त होकर कर्मेन्द्रियों को कर्मयोग में लगाता है, वह विशेष व्यक्ति कहलाता है ।

7. यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।।

मगर ले कवाय-ए अमल से जो काम,
करे पहल मन से हवास अपने राम ।
लगावट न उसको समर का ख्याल,
तो है कर्मयोगी वूही बाकमाल ।।

शब्दार्थ – यः–जो; तु–तो; इन्द्रियाणि–इन्द्रियों को; मनसा–मन से; नियम्य–वश में करके; आरभते–लगाता है; कर्मेन्द्रियैः–कर्मेन्द्रियों से; कर्मयोगम्–कर्मयोग को; असक्तः– अनासक्त होकर; सः–वह; विशिष्यते–विशेष होता है ।

कवाय-ए अमल–कर्मेन्द्रियाँ; हवास–इन्द्रियाँ; राम–वश में; समर–फल; बाकमाल–सिद्ध ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! जो व्यक्ति मन द्वारा इन्द्रियों को नियमन में रखता है, और अनासक्त होकर कर्मेन्द्रियों को कर्मयोग में लगाता है, वह श्रेष्ठ व्यक्ति कहलाता है ।

8. नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः ।।

जो है फर्ज़ तेरा कर उस पर अमल,
कि तर्क-ए अमल से है बेहतर अमल ।
अमल छोड़ देने हों तुझको तमाम,
तो मुश्किल है तेरे बदन का क्याम ।।

शब्दार्थ – नियतम्–निश्चित किये हुए; कुरुः–कर; कर्म–को; त्वम्–तू; ज्यायः–श्रेष्ठ; हि–निश्चय से; अकर्मणः–अकर्म से, अपि–भी; च–और; ते–तेरी; प्रसिद्धयेत्–चल सकेगी; अकर्मणः–अकर्म से ।

तर्क-ए अमल–कर्म-त्याग; बेहतर–श्रेष्ठ; अमल–कर्म; क्याम–टिकाओ ।

भावार्थ – तेरे लिये जो कर्म नियत है, तेरा जो 'स्व-धर्म' है, वह कर्म तू कर, कर्म करना कर्म न करने की अपेक्षा श्रेष्ठ है । बिना कर्म के तो यह शरीरयात्रा भी नहीं चल सकती ।

9. यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ।।

अमल जिस कदर भी हैं यज्ञ के सिवा,
वो दुनियाँ को बन्धन में रक्खें सदा ।
किये जा तू सब काम यज्ञ जान कर,
लगावट न रख और न फल पर नज़र ।।

शब्दार्थ – यज्ञार्थात्–यज्ञ की भावना से; कर्मणाः–कर्म से; अन्यत्र–भिन्न; लोकः–संसार; अयम्–यह; कर्मबन्धनः–कर्म का बन्धन डालने वाला; तदर्थम्–उसके लिये, अर्थात् यज्ञ-भावना से; मुक्तसंगः–असक्ति रहित होकर; समाचर–भली-भाँति आचरण करना ।

सिवा–अतिरिक्त;

भावार्थ – यह सारा संसार कर्म के बंधन में डालने वाला है, जो कर्म यज्ञार्थ किया जाता है उस में बन्धन नहीं पड़ता । इसलिये हे अर्जुन ! कर्म की आसक्ति छोड़कर, सदा कर्म करते रहो । यज्ञ की भावना से किये गये कर्म से कर्म का बन्धन नहीं पड़ता ।

10. सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।

जो खालिक ने इन्साँ को पैदा किया,
तो यज्ञ को भी पैदा किया और कहा ।
कि फूलो-फलो यज्ञ पर रख कर यकीं,
मुरादों की यह गाय है कामधीं ।।

शब्दार्थ– सहयज्ञाः–यज्ञ की भावना के साथ; सृष्ट्वा–रचकर; पुरा–प्राचीन-काल में; उवाच–कहा; अनेन–इससे; प्रसविष्यध्वम्–सन्तानों को उत्पन्न करो; एषः– यह यज्ञ; वः–तुम्हारे लिये; अस्तु–हो; इष्टकामधुक्–इच्छित कामनाओं को देने वाला ।

खालिक–नारायण; कामधीं–कामधेनु ।

भावार्थ – प्रजापति ने प्राचीनकाल में प्राणियों को यज्ञ की भावना के साथ उत्पन्न किया था और कहा था कि तुम भी यज्ञ की भावना से ही सांसारिक सूत्र को चलाओ । यह यज्ञ तुम्हारे लिये तुम्हारी इच्छाओं को पूर्ण करेगा ।

11. देवान्भावयताऽनेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।।

नवाजा करो यज्ञ से तुम देवता,
तुम्हें देवता भी नवाजेय सदा ।
जो इक दूसरे को करो साज़मन्द,
तो हासिल हो तुमको मकाम-ए बलन्द ।।

शब्दार्थ– देवान्–बुजुर्गों को; भावयत–यज्ञ की भावना से बर्तो; अनेन–इस यज्ञ द्वारा; ते–वे; देवाः–दिव्य गुण वाले बुजुर्ग; भावयन्तु–भावना के साथ वर्ते; वः तुम्हारे साथ; परस्परम्–एक-दूसरे के साथ; भावयन्तः–यज्ञ की भावना से बरतते हुए; श्रेयः–कल्याण को; परम्–महान्; अवाप्स्यथ–प्राप्त होंगे ।

नवाज़ा–सन्तुष्ट; नवाज़ी–सन्तुष्टी; साज़मन्द–राज़ी; हासिल–प्राप्त; मकाम-ए बलन्द–कल्याण-प्राप्ति ।

भावार्थ– जैसे यज्ञ की भावना से प्रजापति ने प्राणियों को रचा, प्राणियों को कहा कि तुम इसी यज्ञ की भावना से अगली सृष्टि को रचो, वैसे इसी यज्ञ की भावना से तुम अपने देवों, बड़े-बुजुर्गों के साथ वर्तो; देव, बुजुर्ग लोग तुम्हारे साथ इसी यज्ञ की भावना से वर्तें । इस प्रकार एक-दूसरे के साथ यज्ञ की भावना से वरतने से तुम सब परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे ।

12. इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ।

यज्ञों से नवाज़े हुए देवता,
तुम्हें नेमत सब करेंगे अता ।

मगर ले के नेमत जो देता नहीं,
समझ लो कि वो चोर है बिल्यकीं।।

शब्दार्थ– इष्टान्–इच्छित; भोगान्–भोगों को; हि–निश्चय से; वः–तुम्हें; देवाः–बुजुर्ग लोग; दास्यन्ते–देंगे; यज्ञभावितः–यज्ञ की भावना से प्रसन्न होकर; तैः–उनके द्वारा; दत्तान्–दिये हुए; अप्रदाय–बिना दिये; एभ्यः–इन लोगों को; यः–जो; भुंक्ते–भोगता है; स्तेनः–चोर; एव–ही; सः –वह।

नवाज़ें–सन्तुष्ट; नेमते–साँसारिक भोग पदार्थ, अता–देना; बिल्यकीं–निःसन्देह।

भावार्थ –यज्ञ की भावना से प्रसन्न होकर देवता, तुम्हारे पूजनीय बड़े लोग तुम्हें इष्ट पदार्थों को देंगे। देवों, बुजुर्गों के दिये हुए इन पदार्थों का भाग अगर दूसरों को दिये बग़ैर कोई अकेले उनका भोग करता है वह निश्चित रूप से चोर है।

13. यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

निकोकार खायें जो यज्ञ का बचा,
गुनाहों से करते हैं खुद को रिहा।
जो पापी खुद अपनी ही खातिर पकायें,
तो अपने ही पापों का भोजन वो खायें।।

शब्दार्थ –यज्ञशिष्टाशिनः–यज्ञ से शेष बचे हुए अन्न को खाने वाले; सन्तः–संत पुरुष होते हुए; मुच्यन्ते–मुक्त हो जाते हैं; सर्वकिल्बिषैः–सब पापों से; भुञ्जन्ते–खाते हैं; ते–वे; तु–तो; अघम्–पाप को; पापाः–पापी लोग; ये–जो; पचन्ति–पकाते हैं; आत्मकारणात्–अपने ही लिये।

वास्ते–के लिये; निकोकार–सत्पुरुष; गुनाहों–पापों; रिहा–मुक्त;

भावार्थ –जो सन्त लोग यज्ञ के बाद बची हुई वस्तु 'यज्ञ-शेष' का उपभोग करते हैं वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। पापी लोग जो केवल अपने लिये भोजन पकाते हैं वे तो मानो पाप ही का भोजन करते हैं।

14. अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।

है ज़िन्दों का गल्ले पे दार-ओ मदार,
तो गल्ले का बरश पे हैं इन्हसार।
हो बारश जो यज्ञ का करें एहतमाम,
मगर यज्ञ हों कर्मों से पैदा तमाम।।

शब्दार्थ – अन्नात्–अन्न से; भवन्ति–होते हैं; भूतानि–प्राणी; पर्जन्यात्–मेघ से; अन्नसम्भवः–अन्न होता है; भवति–होता है; पर्जन्यः–मेघ; कर्मसमुद्भवः– कर्म से उत्पन्न होता है।

दार-ओ मदार–निर्भर, गल्ले–अन्न; इन्हसार–सहारा; एहतमाम–प्रबन्ध।

भावार्थ– इस अन्न से सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं। वर्षा से अन्न की उत्पत्ति होती है। वर्षा यज्ञ से पैदा होती है। यज्ञ की उत्पत्ति कर्म से होती है। अतः यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है।

15. कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।

सभी कर्म हों ब्रह्म से रूनुमा,
करे ब्रह्म को रूनुमा लाफ़ना।
सो वो ब्रह्म दुनियाँ पे छाया हुआ,
है यज्ञ के अमल में समाया हुआ।।

शब्दार्थ – ब्रह्मोद्भवम्–ज्ञान से उत्पन्न हुआ; विद्धि–जान; ब्रह्म–ज्ञान; अक्षरसमुद्भवम्–अक्षर से अविनाशी परमेश्वर से उत्पन्न है; तस्मात्–इसलिये; सर्वगतम्–सर्वव्यापी; नित्यम्–सदा; यज्ञे–यज्ञ में; प्रतिष्ठितम्–स्थित है।

रूनुमा–उत्पन्न ; लाफ़ना–अविनाशी।

भावार्थ – कर्म की उत्पत्ति ज्ञान से होती है। ज्ञान की उत्पत्ति अक्षर अविनाशी परमेश्वर से होती है। यह अक्षर सर्वव्यापी परमेश्वर सदा यज्ञ में विद्यमान रहता है।

16. एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।।

इसी तरह दुनियाँ का चलता है दौर,
जो इस दौर से हट के ले राह और।
वो ख्वाइश का बन्दा गुनाहगार है,
हैयात उसकी दुनियाँ में बेकार है।।

शब्दार्थ – एवम्–इस प्रकार; प्रवर्तितम्–चलाये जा रहे; चक्रम्–चक्र को; अनुवर्तयत्ति–आगे चलाता है; इह–यहाँ, इस संसार में; यः–जो; अघायुः–पापमय जीवनवाला; इन्द्रियारामः–इन्द्रियों के सुखों में लिप्त; मोघम्–वृथा; पार्थ–हे अर्जुन; सः–वह; जीवति–जीवित रहता है।

दौर–प्रचलित चक्र; ख्वाइश का बन्दा–विलासी; गुनाहगार–पापी, हैयात–जीवन; बेकार–व्यर्थ।

भावार्थ – संसार में इस प्रकार चलाये जा रहे यज्ञ के चक्र को जो आगे नहीं चलाता वह अघायु है। उसका जीवन पापमय है। ऐसे व्यक्ति इन्द्रियों के सुख के लिए संसार में व्यर्थ ही जीते हैं।

17. यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।।

मगर आत्मा से है जिसको लगन,
फक़त आत्मा में रहे जो मगन।
सदा आत्मा ही से खुरसन्द है,
कहाँ फिर वो कर्मों का पाबन्द है।।

शब्दार्थ – यः–जो; तु–तो; आत्मरतिः–अपने आत्मा में रमण करने वाला; एव–ही; च–और; तस्य–उसके लिये; कार्यम्–कर्त्तव्य; विद्यते–रहता।

खुरसन्द–तृप्त; पाबन्द–अधीन।

भावार्थ – जो व्यक्ति अपने आत्मा के अन्दर ही आनन्द अनुभव करता है, जो आत्मा से ही तृप्त है, आत्मा में ही सन्तुष्ट है, उसके लिये कोई कार्य नहीं है जो उसे करना आवश्यक हो।

18. **नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।**
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः।।

न कुछ उसको अफ़्फ़ाल से फ़ायदा,
न कुछ तर्क-ए आमाल से फ़ायदा।
न दिल बस्तगी है जहाँ से उसे,
न कुछ मुद्दा इयीं ओ-आँ से उसे।।

शब्दार्थ – एव–ही; तस्य–उसको; कृतेन–किये गये कर्म से; अर्थः–प्रयोजन है; अकृतेन–न किये गये कर्म से; इह–इस संसार में; कश्चन–कुछ भी; च–और; अस्य–इसका; सर्वभूतेषु–प्राणियों में; कश्चित्–कुछ भी; अर्थव्यपाश्रयः–निर्भर होना।

अफ़्फ़ाल–कर्म; तर्क-ए आमाल-कर्म–त्याग; दिल-बस्तगे–आसक्ति; मुद्दा–प्रयोजन; इयीं-प्रो आँ–दोनों लोकों से।

भावार्थ – उसके लिये ऐसा कोई कर्म नहीं है जिसका करना आवश्यक हो। उसे कृत-कर्म से न तो कुछ पाना है, न अकृत-कर्म से कुछ लेना है, न किसी इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिये समस्त प्राणियों में से अपने स्वार्थ के लिये किसी पर निर्भर रहना है।

19. **तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।**
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः।।

रहो इसलिये तुम लगावट से दूर,
बजा लाओ फर्ज़ अपने सब बिलज़रूर।
लगावट न रक्खो अमल में पसन्द,
इसी से मिलेगा मकाम-ए बलन्द।।

शब्दार्थ – तस्मात्–इसलिये; असक्तः–अनासक्त होकर; सततम्–लगातार; कार्यम्–करने योग्य; समाचर–करता रह; असक्त–आसक्ति रहित होकर; हि–निश्चय से; आचरन्–करता हुआ; कर्म–कर्म को; परम्–परमात्मा को; आप्नोति–प्राप्त करता है।

लगावट–आसक्ति; बजा–पूरा करना, फर्ज़–कर्तव्य; बिलज़रूर–अवश्य; मकाम-ए बलन्द–परमात्मा ।

भावार्थ– इसलिये तू अनासक्त होकर सदा करने योग्य कर्म करता रह । अनासक्त रहकर कर्म करता हुआ व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त कर लेता है ।।

20. कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ।।

अमल से बुजुर्गों ने पाया कमाल,
जनक जैसे इन्साँ हुए बाकमाल ।
इसी तरह नेकी किये जाओ तुम,
जहाँ को भलाई दिये जाओ तुम ।।

शब्दार्थ– कर्मणा–कर्म से; एव–ही; हि–निश्चय से; संसिद्धिम्–सिद्धि को; आस्थिताः–प्राप्त हुए; जनकादयः–जनक आदि; लोकसंग्रहम्–जन-साधारण को संगृहीत रखने के लिए; एव–ही; अपि–भी; सम्पश्यन्–देखता हुआ; कर्तुम्–कर्म करने को; अर्हसि–योग्य है । बुजुर्गों–पूर्वजों, कमाल–सिद्धि; बा-कमाल–सिद्ध ।

भावार्थ– जनक आदि लोग आसक्तिरहित कर्म द्वारा ही सिद्धि तक पहुँचे थे । यह देखते हुए कि लोकसंग्रह बनाये रखने के उद्देश्य से भी तुझे कर्म करना चाहिये ।

21. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।

कोई नामवर शख़्स करता है काम,
तो करते हैं तकलीद उसकी अवाम ।
बड़ा आदमी जो बनाये असूल,
वूही सारी दुनियाँ करेगी कबूल ।।

शब्दार्थ – यत् यत्–जो-जो; आचरति–आचरण करता है; तत्-तत्–वह-वह; एव–ही; इतरः–दूसरा; जनः– व्यक्ति; सः–वह; यत्–जो; प्रमाणम्–आदर्श; कुरुते–करता है; लोकः–लोग; तत्–वह; अनुवर्तते– अनुगमन करता है ।

नामवर–श्रेष्ठ; शख्स–पुरुष; तकलीद–अनुकरण; अवाम–जनता; असूल– नियम; कबूल–स्वीकार ।

भावार्थ– श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है वही कुछ साधारण जन करने लगते हैं । वह जैसा आदर्श उपस्थित करता है, उसी का लोग अनुगमन करने लगते हैं ।

22. न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ।।

मुझे देख दुनियाँ का देना है कुछ,
न तीनों जहानों से लेना है कुछ ।
कमी कुछ नहीं गो मुझे ज़ीनहार!
मगर फिर भी रहता हूँ मस्रूफ़-ए कार ।।

शब्दार्थ –मे–मेरे लिये; पार्थ–हे अर्जुन; अस्ति–है; कर्तव्यम्–करने योग्य; त्रिषु–तीनों; लोकेषु–लोकों में; किंचन–कुछ भी; अनवाप्तम्–अप्राप्त; अवाप्तव्यम्–प्राप्त होने योग्य वस्तु; वर्ते–बरतता हूँ; एव–ही; च–और; कर्मणि–कर्म में ।
जीनहार–बिल्कुल; मसरूफ़-ए कार–कर्म में तत्पर ।

भावार्थ –हे अर्जुन ! मेरे लिये तीनों लोकों में कोई भी ऐसा कर्म नहीं है जो करना आवश्यक हो और न कोई ऐसा पदार्थ है जो प्राप्त होना चाहिये पर मुझे प्राप्त न हो, परन्तु फिर भी मैं नियतकर्म में व्यस्त ही रहता हूँ ।

23. यदि ह्यहं न वर्तेयं जातं कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।

करूँ मैं न अनथक लगातार काम,
तो रुक जायें दुनियाँ के धन्धे तमाम ।
चलें लोग मेरी रवश पर सभी,
करें काम वो भी न अर्जुन कोई ।।

शब्दार्थ –हि–निश्चय से; अहम्–मैं; वर्तेयम्–इस प्रकार व्यस्त रहूँ; जातु–कभी; कर्मणि–कर्म में; अतन्द्रितः–सावधान होकर; मम–मेरे; वर्त्म–मार्ग; अनुवर्तन्ते–अनुसरण करने लगे; मनुष्याः–सब लोग; पार्थ–हे अर्जुन; सर्वशः–सब प्रकार से ।
प्रवृत्त–लगना; अनुसरण–अनुयायी ।

भावार्थ – यदि मैं सावधान होकर कर्म में व्यस्त न रहूँ तो हे अर्जुन ! सब लोग सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुकरण करने लगें अर्थात् कर्म करना छोड़ दें ।

24. उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ।।

जो तर्क-ए अमल मैं करूँ इखत्यार,
उजड़ जाये दुनियाँ-ए नापायदार ।
हो वरनों का मेरे सबब घाल-मेल,
बिगड़ जाये लोगों की हस्ती का खेल ।।

शब्दार्थ – उत्सीदेयुः–नष्ट हो जायें; इमे–ये; लोकाः–लोक; कुर्याम्–करूँ; चेत्–यदि; अहम्–मैं; संकरस्य–अव्यवस्था का; च–और; स्याम्–होऊँ; उपहन्याम्–मारनेवाला बनूँ; इमाः–इन सब; प्रजाः–लोगों को ।

तर्क-ए अमल–कर्म-त्याग; इख़त्यार–ग्रहण; दुनियाँ-ए नापायदार–नाशी लोक; सबब–कल्याण ।

भावार्थ – यदि मैं कर्म करना छोड़ दूँ, तो ये सब लोक नष्ट हो जायें, मैं संसार में अव्यवस्था फैलाने वाला बन जाऊँ और इन लोगों की शान्ति का विनाशक बनूँगा ।

25. सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वाँस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ।।

हों जिस तरह नादाँ अमल में मगन,
उन्हें काम ही की लगी है लगन ।
हों वैसे ही दाना के निष्काम काम,
रहे ताकि लोगों में कायम निज़ाम ।।

शब्दार्थ – सक्ताः–आसक्त; कर्मणि–कर्म मे; अविद्वांसः–अज्ञानी; कुर्वन्ति–करते हैं; भारत–हे अर्जुन; कुर्यात्–करे; तथा–वैसे; असक्त–अनासक्त होकर; चिकीर्षुः–इच्छुक; लोक-संग्रहम्–

लोगों को इकट्ठा बनाये रखने के लिये ।

नादाँ–अज्ञानी; दाना–ज्ञानी; कायम–स्थित, निजाम–शासन ।

भावार्थ – जिस प्रकार अज्ञानी लोग कर्म में आसक्त हुए सब काम करते हैं, उसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति को चाहिये कि लोक-संग्रह कर्म में अनासक्त होकर कर्म करे ।

26. न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ।।

अगर मूर्खों में अमल का हो जोश,
तज़्ज़ुब न इनको करें एहल-ए होश ।
करें योग में रह खुद कार-ओ बार,
यूँ ही उनको रक्खें वो मसरूफ-ए कार ।।

शब्दार्थ – बुद्धिभेदम्–बुद्धि में भेद; जनयेत्–उत्पन्न करें; अज्ञानाम्–अज्ञानी लोगों की; कर्मसंगिनाम्–कर्म में आसक्त लोगों की; जोषयेत्–प्रेमपूर्वक प्रेरणा दे; सर्वकर्माणि–सब कामों को; युक्तः–कर्म से युक्त हुआ-हुआ; समाचरन्–आचरण करता हुआ ।

तज़्ज़ुब–दुविधा; एहल ए होश–विद्वान्; मस्रूफ़-ए कार–कर्मों में प्रेरे ।

भावार्थ – कर्म में आसक्त अज्ञानी लोगों की बुद्धि में भेद उत्पन्न न करे । ज्ञानी व्यक्ति स्वयं कर्म में युक्त हुआ दूसरों को प्रेमपूर्वक प्रेरणा देकर उनसे भी कर्म कराये ।

27. प्रकृते क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ।।

यह दुनियाँ की रौनक, यह कामों की धुन,
सबब इनका असली है फ़ितरत के गुन ।
मगर जिसके दिल में अहंकार है,
समझता है ख़ुद को कि मुखतार है ।।

शब्दार्थ – प्रकृतेः–प्रकृति के; क्रियमाणानि–किये हुए; गुणैः–गुणों द्वारा; कर्माणि–कर्म; सर्वशः–सम्पूर्ण; अहंकारविमूढात्मा–अहंकार से मोहित है आत्मा जिसका; अहम्–मैं; इति–यह; मन्यते–समझता है।

सबब–कारण; फ़ितरत–प्रकृति; मुख्तार–कर्ता।

भावार्थ – सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों वाली हमारी सम्पूर्ण प्रकृति ही कर्म करती है। परन्तु अहंकार के कारण आत्मा के स्वामित्व को भुलाकर यह मूढ व्यक्ति समझता है कि वह सारे कर्मों का कर्ता है।

28. तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।।

ज़बरदस्त अर्जुन हो जिस पर ऐयाँ,
गुणों और कर्मों का राज़-ए निहाँ।
रहे बे-तअल्लुके कि दुनियाँ के काम,
गुणों पर गुणों के अमल का है नाम।।

शब्दार्थ – तत्त्ववित्–परम सत्य को जानने वाला; तु–तो; महाबाहो–अर्जुन; गुणकर्मविभागयोः–गुण और कर्म इन दोनों के विभाग के; गुणाः–प्रकृति के सत्त्व-रज-तम ये तीन गुण; गुणेषु–प्रकृति के गुणों में; वर्तन्ते–बर्तते हैं; इति–यह; मत्वा–मानकर; सज्जते–आसक्त होता है।

जबरदस्त–वीर; ऐयाँ–प्रगट; राज़-ए निहाँ–छिपा हुआ भेद; बे-तअल्लुक–अनासक्त।

भावार्थ – हे अर्जुन! जो व्यक्ति परम सत्य को जानता है और गुण तथा कर्म इन दोनों के विभाग को, भेद को समझता है, वह यह जानकर कि ये गुण ही प्रकृति के गुणों पर क्रिया कर रहे हैं।

29. प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नवित्र विचालयेत्।।

वो मूरख जो माया के धोखे में आयें,
गुणों और अफ़्फ़ाल में दिल लगायें।
वो जाहिल हैं और अक़्ल में खामकार,
न दुविधा में डालें उन्हें होशियार।।

शब्दार्थ – गुणसंमूढाः–गुणों द्वारा मोह में पड़े हुए; सज्जन्ते–आसक्त होते हैं; गुणकर्मसु–प्रकृति के सत्त्व-रज-तम नामक गुणों द्वारा कर्म में; तान्–उनको; अकृत्स्नविदः–अल्पज्ञानी पुरुष; मन्दान्–मन्द बुद्धि वालों को; कृत्स्नविद्–ज्ञानी; विचालयेत्–विचलित करे ।

अफ़्फ़ाल–कर्मों; जाहिल–मूढ़; खामकार–मन्दबुद्धि, होशियार–तत्त्ववेत्ता ।

भावार्थ – जो व्यक्ति अपने गुणों को प्रकृति के गुणों में क्रिया करते देखकर भ्रम में पड़ जाते हैं वे ही कर्मों में आसक्त होते हैं । ज्ञानी को चाहिये कि उनकी बुद्धि को विचलित न होने दे ।

30. मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ।।

तू मन अपना परमात्मा में लगा,
ख़ुदी-ओ हवस छोड़ मत जी जला ।
मुझे सौंप दे काम सब बे-दरंग,
उठ अर्जुन! उठ अर्जुन! हो मसरूफ-ए जंग ।।

शब्दार्थ – मयि–मुझ में; सर्वाणि–सब; कर्माणि–कर्मों को; संन्यस्य–त्याग कर; अध्यात्म-चेतसा–आध्यात्मिक भावना के चित्त से; निराशीः–आशारहित; निर्ममः–ममतारहित; भूत्वा–होकर; युध्यस्व–युद्ध कर; विगतज्वरः–आलस्य रहित ।

ख़ुदी–अहंकार; हवस–लोभ; जी–मन; बे-दरंग–निर्भयतापूर्वक; मस्रूफ़-ए जंग–युद्ध रत अथवा कर्म-रत होना ।

भावार्थ – अपने सब कर्मों को अध्यात्मचित्त से मेरे प्रति समर्पित करके, आशारहित, ममतारहित एवं आलस्य रहित होकर युद्ध कर ।

31. ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ।।

जो हैं मेरी तालीम पर कारबंद,
करें नुक्ताचीनी को जो नापसन्द ।
अक़ोदत से पाबन्द-ए अरशाद हैं,
वो कर्मों के बन्धन से आज़ाद हैं ।।

शब्दार्थ – ये–जो; मे–मेरे; मतम्–उपदेश को; इदम्–इस; नित्यम्–निरन्तर; अनुतिष्ठन्ति–पालन करते हैं; मानवाः–मनुष्य; अनुतिष्ठन्ति–पालन करते हैं; मानवाः–मनुष्य; श्रद्धावन्तः–श्रद्धावाले; अनसूयन्तः–दोष न देखने वाला; मुच्यन्ते–मुक्त हो जाते हैं; ते–वे; अपि–भी; कर्मभिः–कर्म के बन्धनों से ।

तालीम–शिक्षा; कारबन्द–लगे हुए; नुक्ताचीनी–वाद-विवाद; अक़ीदत–श्रद्धा, पाबन्द-ए अरशाद–आज्ञाकारी ।

भावार्थ – जो व्यक्ति श्रद्धावान् होकर, दूसरों की निन्दा में ही समय न बिता कर मेरे इस उपदेश का निरन्तर पालन करते हैं वे कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं और फलासक्ति उनका पीछा छोड़ देती है ।

32. ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढाँस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ।।

जो आमल नहीं मेरी तलकीन पर,
जो तकरार-ओ हुज्जत करें बेशतर ।
अलूम उनके हैं सब फ़रेब-ओ फ़तूर,
वो जाहिल तबाही में आयें ज़रूर ।।

शब्दार्थ – ये–जो; तु–तो; एतत्–इस; अभ्यसूयन्तः–असूया वाले, छिद्रान्वेषी; अनुतिष्ठन्ति–अनुसार चलते हैं; मे–मेरे; मतम्–उपदेश के; सर्व-ज्ञान-विमूढान–सब ज्ञानों के लिये; तान्–उन्हें; विद्धि–ठीक से जानो; नष्टान्–नष्ट हुये; अचेतसः–मूर्ख ।

तलकीन–उपदेश; तकरार-ओ हुज्जत–वाद-विवाद; बेशतर–बढ़-चढ़कर; अलूम–जानकारियाँ; फ़रेब-ओ फतूर–मिथ्या एवं अशुद्ध; ज़ाहिल–मूढ़; तबाही–नाश ।

भावार्थ – परन्तु जो दूसरों की निन्दा करना ही जानते हैं और मेरे इस उपदेश के अनुसार नहीं चलते, समझ लो कि वे सब प्रकार के ज्ञान के लिये मूर्ख हैं, वे नष्ट होकर रहेंगे ।

33. सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ।।

कोई इल्म से लाख पुरनूर है,
मगर अपनी फितरत से मज़बूर है।
बशर अपनी फिरतर बदलता नहीं,
यहाँ ज़बर से काम चलता नहीं।।

शब्दार्थ – सदृशं–अनुसार; चेष्टते–काम करता है; स्वस्याः–अपनी; प्रकृतेः–प्रकृति के; ज्ञानवान्–विद्वान्; अपि–भी; प्रकृतिम्–प्रकृति को; यान्ति–जाते हैं; भूतानि–प्राणी; निग्रहः–हठपूर्वक रोकना; किम्–क्या; करिष्यति–करेगा।

इल्म–सांसारिक ज्ञान; पुरनूर–सम्पन्न; फितरत–स्वभाव, मजबूर–बाध्य; बशर–मानव; ज़बर–हठ।

भावार्थ – सब प्राणी अपनी प्रकृति के अनुसार, स्वभाव के अनुसार काम करते हैं। प्रकृति को रोकना, स्वभाव का निग्रह करना, हठपूर्वक उसे बदलने का यत्न करने से क्या होगा?

34. इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।

कभी दिल को रग़बत हो महसूस से,
कभी दिल को नफ़रत हो महसूस से।
ये राहज़न हैं दोनों न मरऊब हो,
तू ग़लबे से इनके न मग़लूब हो।।

शब्दार्थ – इन्द्रियस्य–इन्द्रिय के; अर्थे–विषय में; रागद्वेषौ–राग तथा द्वेष; व्यवस्थितौ–स्थित हैं; तयोः–इन दोनों के; वशम्–नियंत्रण में; आगच्छेत्–आये; तौः–ये दोनों; हि–निश्चय से; अस्य–इसके; परिपन्थिनौ–शत्रु हैं।

रग़बत–राग; महसूस–इन्द्रियों के विषय; नफ़रत–घृणा; राहज़न–बटमार; मरऊब–दाओ-पेच; ग़लबे–वश में; मग़लूब–अधीन।

भावार्थ – इन्द्रिय का जो विषय है उसमें राग और द्वेष निश्चित है। ये राग-द्वेष ही व्यक्ति के शत्रु हैं। इनके वश में न आवे, इन्हें तो जीते। परन्तु अपनी प्रकृति या स्वभाव के विरुद्ध न चले।

35. श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।

न ले ग़ैर का धर्म गो खूब है,
कि धर्म अपना नाकिस भी मरग़ूब है।
जो मरना पड़े धर्म पर अपने पर,
तुझे ग़ैर के धर्म में है खतर।।

शब्दार्थ – श्रेयान्–अधिक अच्छा है; स्वधर्मः–अपने नियत कर्म; विगुणः–अपूर्ण, गुण रहित; परधर्मात्–दूसरे के धर्म से; अनुष्ठितात्–भली-भाँति सम्पन्न; स्वधर्मे–अपनी प्रकृति में; विधनम्–मर जाना; श्रेयः–अच्छा है; परधर्मः–दूसरे की प्रकृति; भयावहः–भयजनक है।

ग़ैर–अन्य; नाकिस–गुणरहित; मरग़ूब–अपनाये जाने योग्य; ख़तर–भय।

भावार्थ – अच्छी प्रकार आचरण में लाये हुये दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारी है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है। अतः स्वधर्म का पालन कर।

36. अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।

फिर अर्जुन ने पूछा वो कूअत है क्या,
करे जिससे इन्साँ गुनाह-ओ ख़ता?
ख़ता कोई करता नहीं चाह से,
वो सब कुछ करे ज़बर-ओ अकराह से?

शब्दार्थ – अथ–अब; केन–किससे; प्रयुक्तः–प्रेरित हुआ; अयम्–यह; पापम्–पाप को; चरति–आचरण करता है; अनिच्छन्–न इच्छा करता हुआ; अपि–भी; वार्ष्णेय–कृष्ण; बलात्–बलपूर्वक; इव–मानो; नियोजितः–लगाया गया।

कूअत–शक्ति; गुनाह–पाप; ख़ता–त्रुटियाँ; ज़बर-ओ अकराह–विवश होकर।

भावार्थ – हे कृष्ण! वह क्या वस्तु है जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति न चाहता हुआ भी पापाचरण करता है, जैसे कोई बलपूर्वक उसे पाप में धकेल रहा हो।

37. काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो माहपाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।।

सुना यह तो भगवान बोले कि बस,
गज़बनाक दुश्मन है तेरी हवस।
समझ यह रजोगुण की औलाद है,
यह लोभी है, पापी है, जल्लाद है।।

शब्दार्थ– कामः–कामना; एषः–यह; रजोगुणसमुद्भवः– रजोगुण से उत्पन्न हुआ; महाशनः–सर्वभक्षी; महापाप्मा–बड़ा पापी; विद्धि–जानो; एनम्–इसको; इह–इस संसार में; वैरिणम्–महान् शत्रु।
गज़बनाक–भयानक; हवस–लोभ; जल्लाद–महान् शत्रु।

भावार्थ– यह रजोगुण से उत्पन्न होने वाला काम और क्रोध ही है जो व्यक्ति को न चाहते हुए भी बलपूर्वक पापाचरण में धकेलता है। यह इस संसार का सर्वभक्षी पापी शत्रु है। इस संसार में इसको महान् शत्रु समझो।

38. धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्।।

धुआँ रूय-ए आतिश को जैसे छुपाये,
रुख-ए शीशा पर जिस तरह जंग आये।
छुपे पेट में माँ के जैसे जुर्नी,
हवस में छुपे ज्ञान तेरा यू हीं।।

शब्दार्थ – धूमेन–धुएँ से; आव्रियते–ढकी जाती है; वह्नि–आग; आदर्शः–शीशा; मलेन–मल से; चः–और; उल्वेन–जेर से; आवृतः–ढका रहता है; तथा–वैसे; तेन–उस काम से; इदम्–यह ज्ञान; आवृतम्–ढका रहता है।
रूय-ए आतिश–आग के रूप को, रुख-ए शीशा–शीशा; ज़ुर्नी–गर्भ; हवस–लोभ।

भावार्थ – जिस प्रकार धुएं से आग, मैल से शीशा और जेर से गर्भ ढका रहता है । उसी प्रकार यह ज्ञान साधन काम के द्वारा ढका रहता है ।

39. आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।

है सब ज्ञान वालों की दुश्मन हवस,
यह पीछा न छोड़ेगी राहजन हवस ।
हवस आग ऐसी है कुन्ती के लाल,
कि इस आग का सेर होना मुहाल ।।

शब्दार्थ – आवृतम्–ढका हुआ है; ज्ञानम्–ज्ञान; एतेन–इस काम से; ज्ञानिनः–ज्ञानी के; नित्यवैरिणा–नित्य शत्रु द्वारा; कामरूपेण्–काम है शक्ल जिसकी; कौन्तेय–हे अर्जुन; दुष्पूरेण–जो पूरा नहीं हो सकता; अनलेन–अग्नि द्वारा; च–और ।
राहज़न–बटमार; सेर–तृप्त; मुहाल–अति कठिन ।

भावार्थ – ज्ञानी पुरुष का ज्ञान काम की आग से ढका रहता है । यह काम अत्यंत तीव्र है, यह आग की भाँति सब भस्म करता जाता है और भोग की कामना की लालसा सदा बढ़ती जाती है ।

40. इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ।।

हवास-ओ दिल-ओ अक़्ल ऐ नेक काम,
हवस के लिये हैं ये तीनों मकाम ।
यू हीं ज्ञान इन्साँ का रूपोश हो,
यू हीं तन का बाशी भी मदहोश हो ।।

शब्दार्थ – इन्द्रियाणि–इन्द्रियाँ; अस्य–इसके; अधिष्ठानम्–वासस्थान; उच्यते–कहाते हैं; एतैः–इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि से; विमोहयति–मोहग्रस्त करता है; एष–यह; ज्ञानम्–ज्ञान को; आवृत्य–ढककर; देहिनम्– प्राणी को ।
हवास–इन्द्रिय; दिल–मन; अक़्ल–बुद्धि, नेक-नाम–श्रेष्ठ पुरुष; मकाम–स्थान; रूपोश–छिपना; तन का बाशी–जीवात्मा; मदहोश–भ्रम में आ जाना ।

भावार्थ – इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि ये तीन कामना के वास-स्थान हैं । यह काम इन्हीं के द्वारा जीव के ज्ञान को ढक कर उसे मोह में डाले रखता है ।

41. तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।

इसी वास्ते अर्जुन ऐ हक-शनास,
तू कर पहले काबू में अपने हवास।
हवस को फ़नाह कर कि है यह गुनाह,
करेगी यही इल्म-ओ उरफाँ तबाह।।

शब्दार्थ – तस्मात्–इसलिये; त्वम्–तू; इन्द्रियाणि–इन्द्रियों को! आदौ–आरम्भ में; नियम्य–नियमन करके; भरतर्षभ–हे अर्जुन; पाप्मानम्–पापी कामना को; प्रजहि–मार; हि–निश्चय से; एनम्–इसको; ज्ञानविज्ञान-नाशम्–ज्ञान और विज्ञान के नाश करने वाली।

हुक-शनास–यथार्थता का जानने वाला; हवास–इन्द्रिय; फ़ना–नाश, गुनाह–पाप; इल्म-ओ उरफ़ाँ–ज्ञान-विज्ञान।

भावार्थ – हे अर्जुन! तू आरम्भ में ही इन्द्रियों का नियमन करके ज्ञान-विज्ञान के नाश करने वाली इस पापिनी कामना का बलपूर्वक वध कर दे। इस आत्मा के स्वरूप को जान।

42. इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

हवास आदमी के हैं आला तमाम,
मगर उनसे ऊँचा है मन का मकाम।
है मन से बड़ा मरतबा अक़्ल का,
मगर अक़्ल से बढ़ के है आत्मा।।

शब्दार्थ – इन्द्रियाणि–इन्द्रियों को; पराणि–श्रेष्ठ; आहुः–कहते हैं; इन्द्रियेभ्यः–इन्द्रियों से; परम्–श्रेष्ठ; मनसः–मन से; तु–तो; परा–श्रेष्ठ; बुद्धिः–बुद्धि है; यः–जो; बुद्धेः–बुद्धि से; परतः–अत्यन्त परे है; तु–तो; सः–वह (आत्मा) है।

मरतबा–पद; अक्ल–बुद्धि।

भावार्थ – कहते हैं कि इन्द्रियाँ श्रेष्ठ हैं, इन्द्रियों की अपेक्षा मन अधिक श्रेष्ठ है, मन की अपेक्षा बुद्धि और बुद्धि की अपेक्षा आत्मा अधिक श्रेष्ठ है। आत्मज्ञान हो जाने पर अन्य ज्ञान की अपेक्षा नहीं रहती।

43. एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।।

समझ आत्मा अक़्ल से है बलन्द,
बना नफ़्स को रूह का पायेबन्द।
हवस है तेरी दुश्मन-ए खौफ़नाक,
ज़बरदस्त अर्जुन इसे कर हलाक।।

शब्दार्थ – एवम्–इस प्रकार; बुद्धैः–बुद्धि से; परम्–श्रेष्ठ; बुद्ध्वा–जानकर; संस्तभ्य–वश में कर के; आत्मानम्–अपनी इन्द्रियों मन तथा बुद्धि को; आत्मना–आत्मा से; जहि–मार; शत्रुम्–शत्रु को; महाबाहो–हे अर्जुन; कामरूपम्–कामना है रूप जिसका; दुरासदम्–दुर्जय को।

नफ़्स–मन; रूह–आत्मा; पायेबन्द–अधीन; दुश्मन-ए खौफ़नाक–दुर्जय शत्रु; हलाक–मार देना।

भावार्थ – हे अर्जुन! इस प्रकार आत्मा को बुद्धि से भी श्रेष्ठ जानकर, आत्मज्ञान से नियंत्रण करके कामनारूप दुर्जेय शत्रु को मार डाल। इन्द्रियों का दास न बन।

चौथा अध्याय

जब-जब संसार में पापों की वृद्धि और धर्म का ह्रास होने लगता है। उसी समय सज्जनों, साधुओं की रक्षा और दुष्टों का नाश करने के लिये श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुये कहते हैं कि मैं एक महापुरुष के रूप में जन्म लेता हूँ ताकि धर्म की स्थापना हो सके। चारों वर्णों को भगवान् ने ही समाज के संचालन के लिये गुण एवं कर्मों के अनुसार बनाया है। मुक्त पुरुष भी निष्काम कर्म तो करते ही रहते हैं। अतः कर्मों का परित्याग करने का तो कभी विचार करना ही नहीं चाहिये। पंडित वही है जो सभी कर्मों को इच्छारहित होकर करता है। कर्म वही श्रेष्ठ है जो परमार्थ हेतु किया जाये।

जो ज्ञानी पुरुष कर्मयोग में रत रहता है वह सर्वथा संतुष्ट रहता है, परिणामस्वरूप उसे किसी भी सुख प्राप्ति की तीव्र लालसा नहीं रहती। उसकी कामनाएं अनुशासित एवं नियमित रहती हैं। सफलता-असफलता, मान-अपमान, सुख-दुःख की भावना त्यागकर कर्म करने वाला व्यक्ति कभी कर्मों के बंधन में नहीं फँसता है। व्यक्ति को प्रत्येक कर्म प्रभु को समर्पण करके ही करना चाहिये।

यज्ञ कई प्रकार के होते हैं—स्वाध्याय यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, योग यज्ञ, तप यज्ञ, द्रव्य यज्ञ आदि। द्रव्य यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ हैं। सत्गुरु सेवा से उस ज्ञान की प्राप्ति होती है। तत्त्ववेता पुरुष उस ज्ञान की शिक्षा देते हैं जिसे जानकर व्यक्ति कभी भी मोह में नहीं फँसता है। जैसे अग्नि काठ के ढेर को जला देती है वैसे ही ज्ञान को अग्नि सारे दुष्कर्मों को जला डालती है। केवल श्रद्धालु एवं संयमी व्यक्ति को ही ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है। अश्रद्धालु एवं संशय वाला व्यक्ति सदा दुःख भोगता है।

1. इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।

यही योग जिसको नहीं है फ़नाह,
विवस्वान् को मैंने पहले दिया।
मनु ने लिया फिर विवस्वान् से,
मनु से लिया इसको इक्ष्वाकु से।।

शब्दार्थ – इमम्–इसको; विवस्वते–सूर्य को; योगम्–योग विद्या को; प्रोक्तवान्–कहा था; अहम्–मैंने; अव्ययम्–अमर; विवस्वान्–सूर्य का नाम; मनवे–मनु को; प्राह–बताया; इक्ष्वाकवे–इक्ष्वाकु को; अब्रवीत–कहा।
फ़नाह–विनाश; विवस्वान–सूर्य।

भावार्थ – इस अनश्वर योगविद्या को मैंने सूर्य को कहा था। सूर्य ने इसे (अपने पुत्र वैवस्वत) मनु से कहा और मनु ने इसे अपने पुत्र इक्ष्वाकु को कहा।

2. एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप।।

यही नस्ल-दर-नस्ल आया है योग,
यही राज ऋषियों ने पाया है योग।
मगर अब है दौर-ए ज़माँ से यह हाल,
कि इस योग को आ गया है ज़वाल।।

शब्दार्थ – एवम्–इस प्रकार; परंपराप्राप्तम्–परम्परा से प्राप्त हुए; सः–वह; कालेन–काल क्रम ने; इह–इस लोक में; महता–महान्; योगः–योग-मार्ग; नष्टः–नष्ट हो गया; परंतप–अत्यन्त तप करने वाले।
नस्ल-दर-नस्ल–परम्परागत; जमाँ–कालचक्र; ज़वाल–पतन।

भावार्थ – इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना। हे अत्यन्त तप करने वाले अर्जुन! बहुत काल व्यतीत हो जाने पर वह योग इस लोक में लुप्त हो गया।

3. स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।

यही योग का आज राज़-ए कदीम,
बताया है मैंने तुझे ऐ नदीम।
किया तुझ पे सर्र-ए खफ़ी आशिकार,
कि तू भक्त मेरा है और दोस्तदार।।

शब्दार्थ – सः–वह; एव–ही; अयम्–यह; मया–मैंने; ते–तुझे; अद्य–आज; प्रोक्तः–बताया; असि–तू है; मे–मेरा; सखा–मित्र; च–और;

इति–इसलिये; रहस्यम्–रहस्य; हि–निश्चय से; एतत्–यह; उत्तमम्–श्रेष्ठ, उत्तम ।

राज़-ए कदीम–पुरातन भेद; नदीम–प्यारे; सर्र-ए खफ़ी–अति उत्तम रहस्य; आशिकार–प्रगट ।

भावार्थ – वही पुरातन योग मैंने तुझे आज बताया है । क्योंकि तू मेरा भक्त प्रिय सखा है, इसलिये यह जो उत्तम रहस्य है वह मैं तुझे बता रहा हूँ ।

4. अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ।।

कहा सुन के अर्जुन ने सुनिये हुज़ूर,
जहाँ में हुआ आपका अब ज़हूर ।
विवस्वान् पहले ही मौजूद था,
तो योग आपसे उसने क्योंकर लिया ।

शब्दार्थ – अपरम्–पीछे; भवतः–आपका; परम्–बहुत पहले; विवस्वतः–सूर्य का; कथम्–कैसे; एतत्–यह बात; विजानीयाम्–दिया मान लूँ; त्वम्–तू; आदौ–आदि काल में; प्रोक्तवान्–दिया था; इति–यह (योग-मार्ग) ।

हज़ूर-मान्यवर; ज़हूर–अवतार; मौजूद–उत्पन्न ।

भावार्थ – आपका जन्म तो पीछे हुआ, सूर्य का जन्म पहले हुआ, इसलिये यह मैं कैसे मान लूँ कि आदि-काल में यह (ज्ञानयोग) आपने सूर्य को दिया था ।

5. बहूनि में व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ।।

सुन अर्जुन हुए हैं यहाँ बार-बार,
तुम्हारे हमारे जनम बेशुमार ।
झेहाल इन सब का मालूम है,
तेरा हाफ़जा इनसे महरूम है ।।

शब्दार्थ – बहूनि–बहुत से; मे–मेरे; व्यतीतानि–बीत गये; जन्मानि–अनेक जन्म; तव–तेरे; च–और; तानि–वे; अहम्–मैं; वेद–जानता हूँ;

सर्वाणि–सबको; त्वम्–तू; वेत्थ–जानता है; परन्तप–परम तप करने वाले या शत्रुओं को सताने वाले ।

बेशुमार–अगणित; हाल–विवरण; हाफ़जा–स्मृति; महरूम–वंचित ।

भावार्थ – मेरे और तेरे भी बहुत से जन्म व्यतीत हो चुके हैं । हे शत्रुओं को तपाने वाले अर्जुन! उन सब जन्मों को में जानता हूँ, तू नहीं जानता ।

6. अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्दरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ।।

मेरी ज़ात है मालिक-ए कायनात,
न इसको वलादत न इसको ममात ।
जो काम अपनी फ़ितरत को लाता हूँ मैं,
ज़हूर अपनी माया से पाता हूँ मैं ।।

शब्दार्थ– अजः–अजन्मा; अपि–भी; सन्–होता हुआ; अव्ययात्मा–अविनाशी आत्मा वाला; भूतानाम्–प्राणियों का; ईश्वर–स्वामी; अपि–भी; सन्–होता हुआ; प्रकृतिम्–प्रकृति को, स्वाम्–अपनी; अधिष्ठाय–अधीन करके; संभवामि–उत्पन्न होता हूँ; आत्ममायया–अपनी माया से ।

ज़ात–सत्ता; मालिक-ए कायनात–प्राणेश्वर; वलादत–जन्म; ममात–मृत्यु; ज़हूर–अवतार ।

भावार्थ – यद्यपि मैं अजन्मा हूँ, मेरा आत्मा अविनाशी है, यद्यपि मैं सब प्राणियों का स्वामी हूँ, तो भी अपनी प्रकृति को अपने वश में करके अपनी माया से उत्पन्न होता हूँ ।

7. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

तनज़्ज़ल पे जिस वक्त आता है धर्म,
अधर्म आके करता है बाज़ार गर्म ।
यह अन्धेर जब देख पाता हूँ मैं,
तो इन्साँ की सूरत में आता हूँ ।।

शब्दार्थ – यदा-यदा–जब-जब; हि–ही, धर्मस्य–धर्म का; ग्लानि–ह्रास, हानि; भवति–होती है; भारत–हे अर्जुन!; अभ्युत्थानम्–उठना; अधर्मस्य–अधर्म का; तदा–तब; आत्मानम्–अपने को; सृजामि–पैदा करता हूँ; अहम्–मैं ।

तनज़्ज़ल–पतन ।

भावार्थ – जब-जब ही धर्म का ह्रास होता है, अधर्म का उत्थान होता है । तब-तब मुझ जैसी आत्माओं को परमपिता परमात्मा द्वारा संजोया जाता है ।

8. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।

भलों को बुरों से बचाता हूँ मैं,
बुरों को जहाँ से मिटाता हूँ मैं ।
जड़ें धर्म की फिर जमाता हूँ मैं,
अयाँ हो के युग-युग में आता हूँ मैं ।।

शब्दार्थ – परित्राणाय–रक्षा के लिये; साधूनाम्–साधुओं की; विनाशाय–विनाश के लिये; च–और; दुष्कृताम्–कुकर्मियों का; धर्मसंस्थापनार्थाय–धर्म का स्थापना करने के लिये; संभवामि–पैदा होता हूँ; युगे-युगे–युग-युग में ।

अयाँ–प्रगट ।

भावार्थ – साधुओं की रक्षा के लिये, दुष्टों के विनाश के लिये, धर्म की संस्थापना के लिये मैं युग-युग में जन्म लेता हूँ ।

9. जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नेति मामेति सोऽर्जुन ।।

जो अर्जुन समझ ले इस असरार को,
ख़ुदाई जनम और किरदार को ।
वो मर कर मेरे वस्ल से शाद है,
तनासख के चक्कर से आज़ाद है ।।

शब्दार्थ – च–और; मे–मेरे; दिव्यम्–दिव्य; एवम्–इस प्रकार; यः–जो; वेत्ति–जानता है; तत्त्वतः–वास्तविकता में; त्यक्त्वा–छोड़कर; देहम्–देह को; पुनर् जन्म–पुनर्जन्म को; एति–प्राप्त होता है; माम्–मुझे; ऐति–प्राप्त होता है; सः–वह ।

त्याग–छोड़ना; असरार–रहस्य, ख़ुदाई–दिव्य; किरदार–कर्म; वस्ल–मिलाप; शाद–आनन्दित; तनासख– आवागमन ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! जो व्यक्ति मेरे इस दिव्य जन्म और दिव्य कर्म को ठीक-ठीक जान लेता है वह शरीर छोड़ने के बाद पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त करता, मुझे पहुँच जाता है ।

10. वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ।।

कई महव मुझ में मुझी में मकीम,
तअल्लुक से आज़ाद बे-रंज-ओ बीम ।
सदा ज्ञान तप से करें पाक दिल,
मेरी जात आली में जाते हैं मिल ।।

शब्दार्थ– वीतरागभयक्रोधाः–राग, भय और क्रोध से रहित; मन्मयाः–मुझ में लीन; माम्–मेरी; उपाश्रिताः–शरण में आये हुए; बहवा–अनेक से; ज्ञानतपसा–ज्ञानरूपी तप से; पूताः–पवित्र हुए; मद्भावम्–मेरी भावना में, मेरे स्वरूप को; आगताः–आ पहुँचे हैं ।

महव–तल्लीन; मकीम–स्थित, तअल्लुक– आसक्ति; बे-रंज–प्रसन्नचित; बीम–अभय ।

भावार्थ – ऐसे बहुत से लोग हैं जो राग, भय, क्रोध से मुक्त होकर, मुझ में लीन होकर, मेरी शरण में आकर, ज्ञानरूपी तप से पवित्र होकर मेरे पद को पा गए अर्थात् यहाँ योगेश्वर कहलाये ।

11. ये यथा मां प्रपद्यन्ते ताँस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।

मेरे पास जिस राह से लोग आयें,
मैं राज़ी हूँ अर्जुन मुराद अपनी पायें ।
इधर से चलें या उधर से चलें,
मेरे सब हैं रस्ते जिधर से चलें ।।

शब्दार्थ– ये–जो; माम्–मुझे; प्रपद्यन्ते–शरण में आते हैं; तान्–उन्हें; तथा एव–वैसे ही; भजामि–सेवन करता हूँ; अहम्–मैं; मम–मेरा; वर्त्म–मार्ग; अनुवर्तन्ते–अनुगमन करते हैं; मनुष्याः–मनुष्य; पार्थ–हे पृथा के पुत्र अर्जुन !; सर्वशः–सब प्रकार से ।

भावार्थ– जो लोग जिस भावना से मेरे पास आते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार अपनाता हूँ। हे अर्जुन! प्रत्येक व्यक्ति सब ओर से मेरे मार्ग का अनुगमन करता है।

12. कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा।।

जो कर्मों के फल के हैं तालिब यहाँ
करें देवताओं पे कुरबानियाँ।
कि फ़िल्फ़ौर दुनियाँ में इन्सान की,
मुरादें हों कर्मों से हासिल सभी।।

शब्दार्थ– कांक्षन्त–चाहते हुए; कर्मणाम्–कर्मों की; सिद्धिम्–फल को; यजन्ते–आराधना करते हैं; इह–इस संसार में; क्षिप्रम्–शीघ्र; हि–क्योंकि, ही; मानुषे–मनुष्यों के; लोके–लोक में; सिद्धि–फल; भवति–होता है; कर्मजा–कर्मों द्वारा उत्पन्न होने वाली।
तालिब–इच्छुक; कुरबानियाँ–यज्ञ; फ़िल्फ़ौर–शीघ्रातिशीघ्र; हासिल–प्राप्त।

भावार्थ– कई लोग कर्मों का फल चाहते हैं, इसलिये वे देवताओं की यज्ञों द्वारा आराधना करते हैं, क्योंकि मनुष्यों के इस संसार में कर्मों के द्वारा उत्पन्न होने वाला फल बहुत शीघ्र प्राप्त हो जाता है।

13. चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्।।

बनाये हैं मैंने जो ये वरन चार,
यह कर्मों गुणों की है तकसीम-ए-कार।
मैं खालिक हूँ इनका मगर बिलज़रूर,
अमल से बरी हूँ तग़ैयुर से दूर।।

शब्दार्थ –चातुर्वर्ण्यं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों को; मया–मेरे द्वारा; सृष्टम्–रचे गये हैं; गुणकर्मविभागशः–गुण कर्मों के विभाग के अनुसार; तस्य–उसके; कर्तारम्–कर्ता को अपि–भी; माम्–मुझे; विद्धि–जान; अकर्तारम्–अकर्ता; अव्ययम्–अविनाशी।

खालिक–उत्पन्न करने वाला; बरी–स्वतन्त्र; तग़ैयुर–परिवर्तन ।

भावार्थ – मैंने गुण-कर्म के विभाग के आधार पर चार वर्णों की सृष्टि की है । यद्यपि इस कर्म-विभाग का मैं कर्ता हूँ तो भी तू यह समझ ले कि (निष्कामता के कारण मैं कर्ता होते हुए भी) अव्यय अकर्ता हूँ ।

14. न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न सः बध्यते ।।

न कर्मों का होता है मुझ पर असर,
न कर्मों के फल पर है मेरी नज़र ।
जो ऐसा समझता मुझे पाक है,
वो कर्मों के बन्धन से बेबाक है ।।

शब्दार्थ – माम्–मुझे; कर्माणि–कर्म; लिम्पन्ति–प्रमाणित करते हैं; मे–मेरी; कर्मफले–कर्मों के फल में; स्पहा–इच्छा है; इति–यह बात; माम्–मेरे प्रति; यः–जो; अभिजानाति–जानता है; कर्मभिः–कर्मों से; ।

बेबाक–मुक्त ।

भावार्थ – मुझे कर्मों का लेप नहीं होता । कर्म के फल में मेरी इच्छा नहीं रहती । जो मुझे इस प्रकार जानता है वह भी निष्काम तथा अनासक्त होकर काम करता है इसलिये वह कर्मों के बन्धन में नहीं बन्धता ।

15. एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।।

सलफ़ के बुज़ुर्गों ने पाकर यह बात,
किये काम दुनियाँ में बहर-ए निज़ात ।
इसी तरह तू भी किये जा अमल,
बज़ुर्गों के नक्श-ए कदम ही पे चल ।।

शब्दार्थ – एवम्–इस प्रकार; ज्ञात्वा–जान कर; कृतम्–किये हुए; पूर्वैः–पहले होने वाले; अपि–भी; मुमुक्षुभिः–मोक्ष के अभिलाषियों द्वारा; कुरु–कर; एव–ही; तस्मात्–इस से; त्वं–तू; पूर्वैः–पुरखाओं ने; पूर्वतरम्–बहुत प्राचीन काल में; कृतम्–किया था ।

सलफ़–प्राचीन ; बजुर्गों–पूर्वजों; बहर-ए निजात–मुक्ति के लिये, नक्श-ए कदम–पद-चिह्न ।

भावार्थ – प्राचीन कालीन व्यक्ति, जो मोक्ष पाने के अभिलाषी थे, यह सब गुप्त रहस्य जानकर ही कर्म करते थे, इसलिये तू भी उसी प्रकार कर्म कर जैसे पूर्वजों ने प्राचीन काल में किया था ।

16. किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।।

सुन अब मुझसे कर्मों अकर्मों का राज़,
न दाना भी जिसमें करें इमतियाज़ ।
बताता हूँ कर्मों का रस्ता तुझे,
जो आज़ाद कर देगा संसार से ।।

शब्दार्थ – किम्–क्या; अकर्म–अकर्म है; इति–यह बात; कवयः–विद्वान् लोग; अपि–भी; अत्र–इस बात पर; अहंकार सहित कर्म–अकर्म अहंकार रहित; मोहिताः–भ्रम में पड़े हैं; तत्–वह; ते–तुझे; प्रवक्ष्यामि–बतलाऊँगा; यत्–जो; ज्ञात्वा–जानकर; मोक्ष्यसे–मुक्त हो जाएगा; अशुभात्–अशुभ से ।
दाना–बुद्धिमान; इमतियाज–भेद ।

भावार्थ – क्या कर्म है और क्या अकर्म है, इस विषय में बड़े-बड़े विद्वानों को भी भ्रम हो जाता है । सो मैं तुझे बतलाऊँगा कि वह कर्म क्या है जिसे जान लेने पर तू अशुभ (कर्मबन्धन) तथा स्वजन मोह से मुक्त हो जायेगा ।

17. कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ।।

यह लाज़म है कर्मों को पहचान तू,
बुरे कर्म जो हैं उन्हें जान तू ।
अकर्मों को कर्मों से कर ले जुदा,
कि गहरा है कर्मों का रस्ता बड़ा ।।

शब्दार्थ– कर्मणः–कर्म का स्वरूप; हि–निश्चय से; अपि–भी; बोद्धव्यम्–जानना चाहिये; बोद्धव्यम्–जानना चाहिये; च–और; विकर्मणः–विकर्म का स्वरूप; अकर्मणः– अकर्म का स्वरूप; च–और; बोद्धव्यम्–जानना चाहिये; गहना–गहन; कर्मणः–कर्म की; गतिः–गति है ।

लाज़म–अनिवार्य ।

भावार्थ – कर्म की गति गहन है । हमें यह जान लेना चाहिये कि कर्म, अकर्म एवं विकर्म क्या है ? इन तीनों के यथार्थ ज्ञान होने से ही कल्याण हो सकता है ।

18. कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ।।

वो इन्साँ जो कर्मों में देखे अकर्म,
अकर्म उसको आये नज़र ऐन कर्म ।
वो लोगों में दाना है और होशियार,
वो योगी है गो सब करे कारोबार ।।

शब्दार्थ – कर्मणि–कर्म में; अकर्म–अकर्म को; यः–जो; पश्येत्–देखे; अकर्मणि–अकर्म में; च–और; कर्म–कर्म को; यः–जो; सः–वह; बुद्धिमान्–बुद्धिमान् है; मनुष्येषु–मनुष्यों में; सः–वह; युक्त–योगी; कृत्स्नकर्मकृत्–सम्पूर्ण कर्मों को करने वाला है ।

भावार्थ – जो व्यक्ति 'कर्म' में 'अकर्म' को और 'अकर्म' में 'कर्म' को देख लेता है, वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है और योगी सब कर्मों को कर लेने वाला है ।

19. यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ।।

न ख़वाइश कमी हो काम में जिसके लाग,
जला दे अमल जिसके उरफाँ की आग ।
अमल में समर से है जो बेनियाज़,
है दाना वूही पेश दाना-ए-राज़ ।।

शब्दार्थ – यस्य–जिसके; सर्वे–सब; समारम्भाः–आरम्भ किये हुए कार्य; कामसंकल्पवर्जिताः–फल की इच्छा के दृढ़भाव से रहित होते हैं; ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम्–ज्ञान रूपी अग्नि द्वारा दग्ध हो गये हैं कर्म जिसके; तम्–उसे; आहुः–कहते हैं; पण्डितम्–बुद्धिमान; बुधाः–बुद्धिमान लोग ।

उरफाँ–ज्ञान; समर–फल, बे-नियाज–निरासक्त; दाना–बुद्धिमान्; पेश दाना-ए राज़–पण्डित पुरुषों में शिरोमणि ।

भावार्थ – जिसके सब आरम्भ किये हुए कार्य कामना से रहित होते हैं, जिसके कर्म ज्ञानरूपी अग्नि से भस्म हो गये हैं, उसे बुद्धिमान लोग पण्डित कहते हैं ।

20. त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ।।

अमल में नहीं जिसको फल से लगन,
दिल-ए मुतमैयन में रहे जो मगन ।
सहारा किसी का न ले एक पल,
अमल उसका है ऐन तर्क-ए अमल ।।

शब्दार्थ – त्यक्त्वा–त्याग कर; कर्मफलासंगम्–कर्मफल की आसक्ति को; नित्यतृप्तः–सदा तृप्त रहकर; निराश्रयः–किसी पर आश्रित न रह कर; कर्मणि–कर्म में; अभिप्रवृत्तः–लगा हुआ; अपि– भी; एव–ही; किंचित्–कुछ भी; करोति–करता है; सः–वह ।

दिल-ए मुतमैयन–मानसिक तृप्ति; ऐन–बिल्कुल; तर्क-ए अमल–अकर्म ।

भावार्थ – कर्म के फल के प्रति आसक्ति को त्याग कर, नित्य तृप्त रहकर, किसी पर भी आश्रित न रहकर भले ही वह कार्य में लगा हुआ भी वास्तव में कुछ नहीं करता है ।

21. निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।।

उमीद-ओ हवस से न है कुछ लगन,
जो काबू में है मन तो कब्ज़े में तन ।

जो तन काम में मन रहे ध्यान में,
तो पल भी न गुज़रेगी अस्यान में।।

शब्दार्थ – निराशीः–आशा रहित पुरुष; यतचित्तात्मा–जिसका मन तथा आत्मा वश में है; त्यक्तसर्वपरिग्रहः–त्याग दिया है सब परिग्रह, सम्पत्ति जिसने; शारीरम्–शरीर सम्बन्धी; केवलम्–केवल; कर्म–कर्म; कुर्वन्–करता हुआ; न–नहीं; आप्नोति–प्राप्त करता है; किल्विषम्–पाप को, दोष को।

उमीद–आशा; हवस–लोभ; अस्यान–पाप।

भावार्थ – फल की आशा न रखते हुए, चित्त, मन तथा आत्मा को वश में रखते हुए, सब प्रकार के भोग-साधनों को समेटने की भावना को त्यागते हुए जो व्यक्ति केवल शरीर द्वारा कर्म करता है उसे कोई दोष नहीं लगता।

22. यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।।

जो मिल जाये ले कर वही शाद है,
न हासिद न पाबन्द-ए इजदाद है।
बराबर है जिसके लिये जीत हार,
अमल में अमल का नहीं वो शिकार।।

शब्दार्थ – यदृच्छालाभसंतुष्टः–जो अपने-आप मिल जाये उतने से ही सन्तुष्ट हो जाने वाला; द्वन्द्वातीतः–सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से परे पहुँचा हुआ; विमत्सरः–ईर्ष्यारहित; समः–समत्व भाव वाला; सिद्धौ–सफलता में; असिद्धौ–असफलता में; च–और; कृत्वा–कर्म करके; अपि–भी; निबध्यते–बन्धता है।

हासिद–ईर्ष्या; पाबन्द-ए इज़दाद–द्वन्द्वातीत।

भावार्थ – जो व्यक्ति सहज प्राप्त वस्तु से सन्तुष्ट है, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से परे पहुँच गया है, जो ईर्ष्या से रहित है, सफलता-असफलता में समभाव से रहता है, वह कर्म करता हुआ भी कर्म-बन्धन में नहीं पड़ता।

23. गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।।

तअल्लुक से जो पाक आज़ाद है,
जो उरफाँ में कायम है दिलशाद है।
अमल यज्ञ की खातिर करे जो सदा,
तो कर्म उसके होते हैं सारे फ़ना।।

शब्दार्थ – गतसंगस्य–जो व्यक्ति कर्मफल के संग से मुक्त हो गया है; मुक्तस्य–जो मुक्त हो गया है; ज्ञानावस्थितचेतसः–जिसका चित्त ज्ञान में अवस्थित हो गया है; यज्ञाय–यज्ञ के लिये; आचरतः–आचरण करते हुए; समग्रम्–सब; प्रविलीयते–पूर्ण रूप से विलीन हो जाता है।

उरफाँ–ज्ञान; कायम–स्थित; फ़ना–विनाश।

भावार्थ – जो व्यक्ति कर्म के फल के संग से मुक्त हो गया है, जिसका चित्त ज्ञान में अवस्थित हो गया है, जो अपने प्रत्येक कर्म को यज्ञ समझकर करता है, उसके सारे कर्म ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।

24. ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।

जो क्रिया में देखे ख़ुदा ही ख़ुदा,
है अग्नि ख़ुदा और हवी भी खुदा।
हवन और हवन करने वाला वोही,
ख़ुदा से जुदा वो न होगा कभी।।

शब्दार्थ – ब्रह्म–ब्रह्म ही है; अर्पणम्–घृत को यज्ञाग्नि में अर्पण करने वाला स्रुवा; ब्रह्म–ब्रह्म ही है; हविः–हवन करने योग्य द्रव्य; ब्रह्माग्नौ–ब्रह्म रूप अग्नि में; ब्रह्मणा–आत्मा द्वारा; हुतम्–हवन किया गया है; एव–ही; तेन–उसके द्वारा; गन्तव्यम्–पहुँचने योग्य है; ब्रह्मकर्मसमाधिना–ब्रह्म रूपी कर्म की समाधि द्वारा।

हवी–हवन सामग्री; ज़ुदा–पृथक् (अलग)।

भावार्थ– यज्ञ में प्रयुक्त होने वाला स्रुवा ब्रह्म है, यज्ञ में दी जाने वाली हवि ब्रह्म है, जीवनयज्ञ में ब्रह्म द्वारा ब्रह्म रूपी अग्नि में होम हो रहा है, ब्रह्मरूपी कर्म की समाधि द्वारा उसे ब्रह्म को ही प्राप्त करना है, वही उसका गन्तव्य है ।

25. दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ।।

कई कर्मयोगी हैं इनसे अलग,
वो बस देवताओं को देते हैं यज्ञ ।
जला कर कई आतिश-ए कुबरिया,
करें यज्ञ को इस यज्ञ के अन्दर फ़ना ।।

शब्दार्थ – दैवम्–देव यज्ञ को; एव–ही; अपरे–दूसरे; यज्ञम्–यज्ञ को; योगिनः–योगी जन; पर्युपासते–करते हैं; ब्रह्माग्नौ–ब्रह्म रूप अग्नि में; यज्ञेन–यज्ञ द्वारा; एव–ही; उपजुह्वति–होम करते हैं । आतिश-ए कुबरिया–ब्रह्माग्नि ।

भावार्थ – कुछ योगी देवताओं को लक्ष्य में रखकर यज्ञ करते हैं, कोई दूसरे योगी ब्रह्माग्नि में यज्ञ द्वारा ही यज्ञ करते हैं ।

26. श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।।

कई ज़ब्त दिल से जलायें मदाम,
समाअत-ए हुर्सी दूसरी भी तमाम ।
कई हिस की आतिश में कर दें फना,
सब अलिया-ए महबूब मिसल-ए सदा ।।

शब्दार्थ – श्रोत्रादीनि–कान आदि; इन्द्रियाणि–इन्द्रियों को, अन्ये–दूसरे लोग; संयमाग्निषु–संयम की अग्नि में; जुह्वति–होम देते हैं; शब्दादीन्–शब्द आदि को; विषयान्–विषयों को; अन्ये–दूसरे लोग; इन्द्रियाग्निषु–इन्द्रियों की अग्नि में; जुह्वति्–होम देते हैं । ज़ब्त–संयम; मदाम–सदा; समाअत-ए हुर्सी–इन्द्रियों के विषय; हिस–इन्द्रिय रूपी अग्नि; अशिया-ए महसूस–इन्द्रियों के विषय; मिसल-ए सदा–शब्दादि विषय ।

भावार्थ – कई लोग कान आदि इन्द्रियों का संयम रूप में होम करते हैं । कई लोग शब्द, रूप आदि विषयों का इन्द्रियों की अग्नि में होम करते हैं । किन्तु इन्द्रियाग्नि का होम करनेवाले इन्द्रियों के विषयों का जी भरकर भोग करते हैं, दोनों एक-दूसरे से उलटे हैं ।

27. सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ।।

कई ज़ब्त से योग ऐसा कमायें,
दिल-ओ जाँ में उरफाँ की आतिश जलायें ।
हों अफ़्फ़ाल-हिस या हों अफ़्फ़ाल-ए दम,
इसी ज्ञान अग्नि में कर दें भसम ।।

शब्दार्थ – सर्वाणि–सब; इन्द्रियकर्माणि–इन्द्रियों के कर्म; प्राणकर्माणि–प्राणों के कर्म; च–और; अपरे–दूसरे लोग; आत्मसंयमयोगाग्नौ–आत्म-संयम रूपी योग की अग्नि में; जुह्वति–होम देते हैं; ज्ञानदीपिते–ज्ञान से प्रदीप्त ।

ज़ब्त–संयम; उरफाँ–ज्ञान, आतिश–अग्नि; अफ़्फ़ाल-ए हिस–कर्मेन्द्रियाँ, अफ़्फ़ाल-ए दम–प्राण कर्मों ।

भावार्थ – दूसरे योगी जन इन्द्रियों की सम्पूर्ण क्रियाओं को और प्राणी की समस्त क्रियाओं को ज्ञान से प्रकाशित आत्मसंयम योगरूप अग्नि में हवन किया करते हैं ।

28. द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ।।

कई धन से और तप से करते हैं यज्ञ,
कई योग और जप से करते हैं यज्ञ ।
कई लोग करते हैं यज्ञ ज्ञान से,
वो ऐहद अपना पूरा करें जान से ।।

शब्दार्थ – द्रव्ययज्ञाः–अपने भौतिक द्रव्यों का लोक-सेवा के लिये होम कर देने वाले; तपोयज्ञाः–तपस्या रूपी यज्ञ करने वाले; योगयज्ञाः–योगाभ्यास रूपी यज्ञ करने वाले; अपने–दूसरे; स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः–स्वाध्याय रूपी ज्ञानयज्ञ करने वाले हैं; च–और; यतयः–यति लोग; संशितव्रताः–दृढ़ व्रतधारी ।

भावार्थ – इस प्रकार तीक्ष्ण व्रत का आचरण करने वाले कुछ यति अपनी भौतिक सम्पत्ति का होम करके 'द्रव्य-यज्ञ' करते हैं, कुछ यति योग-विद्या का अभ्यास करके 'योग-यज्ञ' करते हैं, कुछ यति स्वाध्याय करके 'ज्ञान-यज्ञ' करते हैं ।

29. अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ।।

कई हिस दम में दिखायें कमाल,
कि यज्ञ उनका है रोकना दम की चाल ।
वो दम अपने करते हैं कुरबान यूँ,
दरूँ में बरूँ और बरूँ में दरूँ ।।

शब्दार्थ – अपाने–अपान में; जुह्वति–होम करते हैं; प्राणम्–प्राण को; प्राणे–प्राण में; अपानम्–अपान को; तथा–वैसे; अपरे–दूसरे लोग; प्राणापानगती–प्राण और अपान की गति; रुद्ध्वा–रोक कर; प्राणायामपरायणाः–प्राणायाम के अभ्यासी लोग ।
हिस–प्राणायाम; दरूँ–अन्दर; बरूँ–बाहर ।

भावार्थ – कुछ व्यक्ति जो प्राणायाम के अभ्यासी हैं वे प्राण तथा अपान की गति रोक कर प्राण का अपान में और अपान का प्राण में होम करते है ।

30. अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ।।

कई रख के ज़ब्त-ए ग़िज़ा-ए बदन,
करें प्राण पर प्राण अपने हवन ।
उन्हें यज्ञ के इसरार मालूम हैं,
वो यज्ञ के सबब पाक मासूम हैं ।।

शब्दार्थ – अपरे–दूसरे; नियताहाराः–आहार को नियमित करने वाले; प्राणान्–प्राणों को; प्राणेषु–प्राणों में; जुह्वति–आहुति देते हैं; सर्वे–सभी; अपि–भी; एते–ये; यज्ञविदः–यज्ञ के रहस्य को जानने वाले; यज्ञक्षपित-कल्मषाः–यज्ञमय जीवन द्वारा नष्ट हो गया है पाप जिनका, निष्पाप ।

ज़ब्त-ए ग़िज़ा-ए बदन–नियत आहारी; इसरार–भेद; सबब–कारण, पाक–निष्पाप ।

भावार्थ – कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जो आहार को नियमित करके प्राणों से प्राणों में आहुति देते हैं । वे प्राणयज्ञ द्वारा ही जीते हैं । ये सब यज्ञविद् हैं । यज्ञ के रहस्य को जानने वाले हैं और यज्ञमय जीवन द्वारा उनके पाप नष्ट हो जाते हैं ।

31. यज्ञशिष्टाऽमृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ।।

वो अमृत के लुकमें जो यज्ञ से बचें,
उन्हें खाने वाले ख़ुदा में रचें ।
है अर्जुन वो महरूम छोड़े जो यज्ञ,
न यह जग ही उसका न अगला ही जग ।।

शब्दार्थ – यज्ञशिष्टामृतभुजः–यज्ञ से अवशिष्ट अमृत रूपी भोजन का सेवन करने वाले; यान्ति–पहुँचते हैं; ब्रह्म–ब्रह्म को; सनातनम्–सनातन; अयम्–यह; अस्ति–है; अयज्ञस्य–यज्ञ न करने वाले के लिये; कुतः–कहाँ; अन्यः–दूसरा लोक; कुरुसत्तम–कुरुओं में श्रेष्ठ अर्जुन ।

लुकमे–ग्रास; महरूम–वंचित ।

भावार्थ – जो लोग यज्ञ से अवशिष्ट अमृतरूपी भोजन का सेवन करते हैं, वे सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं । हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ! जो व्यक्ति यज्ञ नहीं करता उसको तो यह लोक प्राप्त नहीं होता परलोक कहाँ प्राप्त हो सकता है ।

32. एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ।।

बहुत यज्ञ के आमाल-ओ दस्तूर हैं,
जो ब्रह्म यानी वेदों में मज़कूर हैं ।
कि यज्ञ सारे कर्मों की औलाद हैं,
जो ऐसा समझ लें, वो आज़ाद हैं ।।

शब्दार्थ – एवम्–इस प्रकार; बहुविधाः–अनेक प्रकार के; यज्ञाः–यज्ञ; विततााः–फैले हुए है; ब्रह्मणः मुखे–वेदवाणी में; कर्मजान्–कर्म से उत्पन्न हुए; विद्धि–जान; तान्–उसको; सर्वान्–सबको' एवम्–इस प्रकार; ज्ञात्वा–जानकर; विमोक्ष्यसे–मुक्त हो जाएगा ।

आमाल–कर्म; दस्तूर–नियमावली; मजकूर–वर्णित ।

भावार्थ – इस प्रकार अनेक प्रकार के यज्ञ वेदवाणी में फैले हुए हैं । ये सब यज्ञ कर्म से उत्पन्न हुए हैं । ऐसा जान लेने पर तू कर्म बन्धन से मुक्त होगा ।

33. श्रेयान्द्रव्यमयाद् यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।।

करें साज़-ओ सामाँ से इन्सान यज्ञ,
मगर सब से बेहतर समझ ज्ञान यज्ञ ।
सुन अर्जुन अगर तुझ को पहचान है,
कि हर कर्म की इन्तहां ज्ञान है ।।

शब्दार्थ – श्रेयान्–श्रेष्ठ है; द्रव्यमयात्–द्रव्यमय से; यज्ञात्–यज्ञ से; ज्ञानयज्ञ–ज्ञानयज्ञ; परन्तप–शत्रुओं को दण्डित करने वाले अर्जुन; सर्वम्–सब; कर्म–कर्म; अखिलम्–सब; पार्थ–हे अर्जुन; ज्ञानं–ज्ञान में; परिसमाप्यते–समाप्त हो जाते हैं ।

साज़-ओ सामाँ–द्रव्यमय; इन्तहा–समाप्ति ।

भावार्थ – हे शत्रुओं को दण्डित करने वाले अर्जुन ! 'द्रव्य-यज्ञ, जिसका सब से पहले वर्णन किया गया, उसकी अपेक्षा 'ज्ञान-यज्ञ' जिसका सबसे अन्त में वर्णन किया गया, अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि सब कर्म जाकर ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं ।

34. तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।

जो ज्ञानी हैं तू उनकी ताज़ीम कर,
हसूल उनसे उरफ़ाँ की तालीम कर ।
समझ उनसे सब कुछ बा-इज़्ज़-ओ न्याज़,
तू कर उनकी सेवा तू सीख उनसे राज़ ।।

शब्दार्थ – तत्–वह बात; विद्धि–जान; प्रणिपातेन–प्रणिपात अर्थात् दण्डवत् प्रणाम करके; परिप्रश्नेन–प्रश्न तथा शंका समाधान करने से; सेवया–सेवा करने से; उपदेक्ष्यन्ति–उपदेश देंगें; ते–तुझे; ज्ञानम्–ज्ञान को; ज्ञानिनः–ज्ञानी लोग; तत्वदर्शिन–तत्त्वदर्शी लोग ।

ताज़ीम–आदरमान; हसूल–प्राप्त; उरफाँ–ज्ञान; बा-इज़्ज़त-ओ-न्याज़–विनम्रतापूर्वक ।

भावार्थ – यह बात गुरुओं के चरणों में प्रणिपात से उनके सम्मुख सिर झुकाने से, निष्कपट भाव से उनसे प्रश्न तथा शंकासमाधान करने से, गुरुओं की सेवा करने से तू जान सकेगा । जब तू ऐसा करेगा जब तत्त्वदर्शी ज्ञानी इस तत्वज्ञान का तुझे उपदेश देंगे । क्योंकि उन्होंने सत्य का दर्शन किया है ।

35. यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ।।

जो अर्जुन मिले ज्ञान उलझन हो दूर,
तो हो हक़ीक़त का तुझ पर ज़हूर ।
कि सारा जहाँ है तेरी ज़ात में,
तेरी ज़ात यानी मेरी ज़ात में ।।

शब्दार्थ – यत्–जिसे; ज्ञात्वा–जानकर; पुनः–फिर; मोहम्–मोह को; एवम्–इस प्रकार; यास्यसि–प्राप्त होगा; पाण्डव–हे अर्जुन; येन–जिससे; भूतानि–प्राणियों को; अशेषेण–समस्त; द्रक्ष्यसि–देखेगा; आत्मनि–अपने में; अथ उ– उस के उपरांत; मयि–मुझमें ।

हक़ीक़त–यथार्थता; ज़हूर–प्रगट ।

भावार्थ – ऐसा ज्ञान जिसे जानकर, हे अर्जुन ! तू इस प्रकार के मोह को फिर नहीं प्राप्त होगा । यह ज्ञान ऐसा होगा जिससे तू सब प्राणियों को अपने में देखेगा । प्राणी-प्राणी में भेद-बुद्धि के कारण जो तू मोह में पड़ा हुआ है ज्ञान की आँख खुल जाने पर तेरी वह भेद-बुद्धि समाप्त हो जायेगी ।

36. अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि।।

जो पापी है या तू गुनाहगार है,
गुनाहगार बन्दों का सरदार है।
तो फिर ज्ञान नैया पे हो जा सवार,
गुनाहों के सागर से कर देगी पार।।

शब्दार्थ – अपि–भी; चेत्–अगर; असि–तू है; पापेभ्यः–पापियों से; सर्वेभ्य–सब से; पापकृत्तमः–सर्वाधिक पापी; सर्वम्–सब; ज्ञानप्लवेन–ज्ञान रूपी नौका द्वारा; एव–ही; वृजिनम्–पाप को; सन्तरिष्यसि–तर जाएगा।
गुनाहगार–कुकर्मी।

भावार्थ – चाहे तू सब पापियों की अपेक्षा सबसे बढ़कर पापी हो, फिर भी तू ज्ञान की नौका द्वारा ही पाप के सागर को तर जायेगा।

37. यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।।

सुन अर्जुन जो अम्बार-ए खाशाक है,
लगे आग इसमें तो सब खाक है।
यूहीं ज्ञान अग्नि से जाते हैं जल,
बुरे हों अमल या भले हों अमल।।

शब्दार्थ– यथा–जैसे; एधांसि–इन्धन को; समिद्धः–प्रदीप्त; भस्मसात्–राख; कुरुते–कर देती है; ज्ञानाग्निः–ज्ञान रूपी आग; सर्वकर्माणि–सब कर्मों कों; कुरुते–कर देती है; तथा–वैसे।
अम्बार-ए खाशाक–घास-फूस का ढेर।

भावार्थ– हे अर्जुन! जैसे अग्नि प्रदीप्त होने पर इन्धन के ढेर को भस्मसात कर देती है वैसे जब ज्ञानाग्नि प्रदीप्त हो जाती है तब वह सब कर्मों के बन्धनों को भस्मसात् अर्थात् खत्म कर देती है।

38. न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।

नहीं शय जहाँ में कोई ज्ञान-सी,
करे पाक फ़ितरत जो इन्सान की।
अगर पुख़्तगी योग में पायेगा,
तो ख़ुद ज्ञान भी उसको हो जायेगा।।

शब्दार्थ – हि–निश्चय से; ज्ञानेन–ज्ञान के; सदृशम्–समान; पवित्रम्–पवित्र; इह–इस लोक में; विद्यते–है; तत्–वह; स्वयम्–अपने आप; योगसंसिद्धः–कर्मयोग से सिद्ध हुआ; कालेन–काल पाकर; आत्मनि–आत्मा में; विन्दति–पा लेता है । फ़ितरत–स्वभाव; पुखतगी–दृढ़ता ।

भावार्थ – सत्य ज्ञान के सदृश इस पृथ्वी पर पवित्र वस्तु दूसरी कोई नहीं है । जिसका कर्मयोग सिद्ध हो जाता है वह काल पाकर अपने आत्मा में स्वयं ज्ञान को पा लेता है । आत्मसाक्षात्कार हो जाने पर परमात्मा का ज्ञान स्वतः हो जाता है ।

39. श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।

वो ज्ञानी है जिसको हो पुख्ता यकीं,
हवास अपने रक्खे जो जेर-ए नगीं ।
उसे ज्ञान हासल हो इन्जाम-ए कार,
वो पाये ख़ुदाई सकून-ओ करार ।।

शब्दार्थ – श्रद्धावान्–श्रद्धालु व्यक्ति; लभते–प्राप्त करता है; ज्ञानम्–ज्ञान को; तत्परः–पीछे पड़ जाने वाला; संयतेन्द्रियः–इन्द्रियों को वश में कर लेने वाला; ज्ञानम्–ज्ञान को; लब्ध्वा–प्राप्त कर; पराम्–दिव्य; शान्तिम्–शान्ति को; अचिरेण–तुरन्त; अधिगच्छति–पा जाता है । यकीं–विश्वास; हवास–इन्द्रियाँ; ज़ेर-ए नगीं–अपने वश में, इन्जाम-ए कार–अन्ततः; खुदाई–दिल; सकून-ओ करार–परम शान्ति ।

भावार्थ – जैसे 'कर्म' सिद्ध होते-होते 'ज्ञान' का उदय होता है वैसे 'श्रद्धा' वाला भी जब ज्ञान को आचरण में लाता है, इन्द्रियों को वश में कर लेता है, तब वह भी 'ज्ञान' को प्राप्त कर तुरन्त ही परम शान्ति को पा जाता है ।

40. अज्ञश्चाश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ।।

वो ज़ाहिल नहीं जिसको दिल का यर्की,
तज़्ज़ब से पहुँचे फ़ना के करीं।
रहे डगमगाता न हो शादमाँ,
यह दुनियाँ है उसकी न अगला जहाँ।।

शब्दार्थ – अज्ञः–अज्ञानी; च–और; अश्रद्धधानः–श्रद्धारहित; च–और; संशयात्मा–संशयवाला; विनश्यति–नष्ट हो जाता है; अयम–यह; लोकः–लोक; अस्ति–है; परः–परलोक; सुखम्–सुख; संशयात्मनः–संशययुक्त पुरुष के लिये।
ज़ाहिल–मूढ़; यर्की–श्रद्धा; तज़्ज़ब–संशय; फ़ना–नष्ट प्रायः; शादमाँ–प्रसन्नचित्त; अगला जहाँ–परलोक।

भावार्थ – जो स्वयं कुछ जानता नहीं और दूसरे पर विश्वास करने में उसकी श्रद्धा नहीं और हर बात में सशंय तर्क-वितर्क करता रहता है–ऐसा संशयालु स्वभाव का व्यक्ति नष्ट हो जाता है। ऐसे हर बात में संशय करने वाले व्यक्ति के लिये न इस लोक में न परलोक में सुख है।

41. योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।।

किया योग से जिसने तर्क-ए अमल,
कटे ज्ञान से जिसके वहम-ओ खलल।
वही आत्मा का जिसे ज्ञान है,
कहाँ उसको कर्मों से नुकसान है।।

शब्दार्थ – योगसन्यस्तकर्माणम्–योग द्वारा सब कर्मों को त्याग दिया है जिसने; ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्–ज्ञान द्वारा छिन्न कर दिया है संशय को जिसने; आत्मवन्तम्–आत्मा पर अधिकार कर लिया है जिसने; कर्माणि–कर्म; निबध्नन्ति–बांधते हैं; धनञ्जय–हे अर्जुन।
तर्क-ए अमल–कर्म-त्याग; बहम-ओ खलल–संशय।

भावार्थ – हे अर्जुन! जिसने निष्काम कर्म योग द्वारा सब कर्मों को त्याग दिया है, जिसने ज्ञान द्वारा सब संशयों को छिन्न-भिन्न कर दिया है, जिसने आत्मा पर अधिकार कर लिया है, उसका आत्मबल बढ़ जाता है और वह कर्म बन्धन में नहीं बंधता।

42. तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत।।

जहालत से पैदा हुए हैं जो शक,
मिटा ज्ञान की तेग़ से यक-बयक।
उठ ऐ भारत! और छोड़ सब वहम-ख़ाम,
तू रख योग में दिल की कायम मदाम।।

शब्दार्थ – तस्मात्–इसलिये; अज्ञानसंभूतम्–अज्ञान से उत्पन्न; हृत्स्थम्–हृदय में स्थित; ज्ञानासिना–ज्ञान रूपी तलवार द्वारा; आत्मनः–आत्मा में; छित्त्वा–काट कर; एनम्–इसको; संशयम्–संशय को; योगम्–योग-मार्ग को; अतिष्ठ–जुट जा; उत्तिष्ठ–उठ खड़ा हो; भारत–हे भरतवंशी अर्जुन।

जहालत–अज्ञानता; शक–संशय; तेग–तलवार; यक-बयक–एकदम; वहम-खाम–अज्ञान; कायम–स्थित; मदाम–सदा।

भावार्थ – इसलिये हे अर्जुन! अज्ञान से उत्पन्न होने वाले हृदय में बैठ गये संशय को आत्मा के ज्ञानरूपी तलवार से काट कर योग-मार्ग में जुट जा और युद्ध के लिये खड़ा हो जा।

पाँचवाँ अध्याय

कर्मों के परित्याग की अपेक्षा कर्मफल का परित्याग श्रेष्ठ है। वह मानव सदा संन्यासी ही है जोकि किसी से न कभी घृणा एवं द्वेष करता है न कभी किसी से कुछ इच्छा करता है। संन्यास एवं कर्मयोग एक ही वस्तु है। निष्कामभाव से कर्म करता हुआ। प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही समान समझने वाला व्यक्ति कभी भी कर्मों में लिप्त नहीं होता है। सब कर्मों को प्रभुसमर्पण करके जो व्यक्ति कर्म करता है वह कभी पाप का भागी नहीं होता है।

बुद्धिमान व्यक्ति सभी पापियों को समान भाव से देखते हैं। वे किसी को नीची नज़र से नहीं देखते हैं। जिन व्यक्तियों में यह समता की भावना आ जाती है वे एक प्रकार से मुक्त ही हैं। ज्ञानी को भी सुख-दुःख का अनुभव नहीं होता है। सुख व दुःख के भाव तो केवल आसक्ति से उत्पन्न होते हैं। संसार के कर्मों में आसक्ति न होने वाले को कभी परेशानी होती ही नहीं है। काम एवं क्रोध के वेग को जीतने वाला व्यक्ति सदा सुखी रहता है। अनासक्त होकर कर्म करते रहने से मन शुद्ध हो जाता है, तब वह ध्यानयोग में समक्ष हो जाता है। परन्तु मन की पवित्रता एवं निर्मलता पाने के लिये पहले उच्छृंखल इच्छाओं को नियंत्रित करना आवश्यक है।

1. संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्।।

कभी कर्मयोग आप अच्छा बतायें,
कभी कर्म संन्यास के गुण सुनायें।
है भगवान् कौन इनमें मरग़ूब-तर,
अमल है कि तर्क-ए अमल खूब तर।।

शब्दार्थ – संन्यासम्–छोड़ देने को; कर्मणाम्–कर्मों के; कृष्ण–हे कृष्ण; पुनः–फिर; योगम्–न छोड़ने को; च–और; शंससि–प्रशंसा करते हो; यत्–जो; एतयोः–इन दोनों में से; एकम्–एक; तत्–वह; मे–मुझे; ब्रूहि–बतलाओ; सुनिश्चितम्–निश्चित तौर पर।
मरग़ूब-तर–श्रेष्ठ; तर्क-ए अमल–कर्म त्याग; खूबतर–श्रेष्ठ।।

भावार्थ – अर्जुन ने कहा, आप एक बार 'कर्मयोग' की प्रशंसा करते हो और फिर दूसरी बार 'ज्ञानयोग' संन्यास की। इन दोनों में से एक मार्ग को बतलाओ जो निश्चित रूप में अधिक श्रेयस्कर हो।

2. संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।।

कही सुन के भगवान ने फिर यही बात,
हैं तर्क और अमल दोनों राह-ए निज़ात।
फ़जीलत में लेकिन है बढ़ कर अमल,
कि तर्क-ए अमल से है बेहतर अमल।।

शब्दार्थ – संन्यासः–ज्ञानयोग; च–और; निःश्रेयसकरौ–परम कल्याण करने वाले; उभौ–दोनों; तयोः–उन दोनों में से; तु–तो; कर्मसंन्यासात्–ज्ञानयोग से; कर्मयोगः– कर्मयोग; विशिष्यते–अधिक अच्छा है।

तर्क–संन्यास; अमल–कर्मयोग; राह-ए निजात–मुक्ति पथ; फ़ज़ीलत–श्रेष्ठता।

भावार्थ – ज्ञानयोग और कर्मयोग ये दोनों परम कल्याण को देने वाले हैं, परन्तु इन दोनों में से कर्म को त्याग देने वाले ज्ञान-योग की अपेक्षा कर्म-योग निष्काम कर्म अधिक अच्छा है।

3. ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते।।

सदा संन्यासी उसे जानिये,
हो नफ़रत किसी से न रग़बत जिसे।
मुकैयद न पाबन्द-ए इज़्दाद है,
सुन अर्जुन वही मर्द आज़ाद है।।

शब्दार्थ – ज्ञेयः–समझना चाहिये; सः–वह; नित्यसंन्यासी–सदा संन्यासी; यः–जो; द्वेष्टि–द्वेष करता है; कांक्षति–इच्छा करता है; निर्द्वन्द्वः–द्वन्द्वों से मुक्त; हि–निश्चय से; महाबाहो–हे महाबाहु अर्जुन; सुखम–सरलता से; बन्धात्–कर्म के बन्धन से; प्रमुच्यते–छूट जाता है।

नफ़रत–द्वेष; रग़बत–राग; मुकैयद–परतंत्र; न पाबन्द-ए इज़्दाद–द्वन्द्वातीत ।

भावार्थ –जो व्यक्ति कर्मयोगी है, उसे ज्ञानयोगी ही समझो, क्योंकि जो किसी से घृणा नहीं करता, किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता, द्वन्द्वों से मुक्त है, हे अर्जुन ! उसमें सदा ज्ञानमार्ग की भावना भरी हुई है । वह कर्मों के बन्धन से सरलता से मुक्त हो जाता है ।

4. सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।।

वो है तिफ़्ल-ए नादाँ जहालत में ग़र्क,
जो संन्यास और योग में पायें फ़र्क ।
जो दोनों से इक में भी कामल हुआ,
तो फल उसको दोनों का हासल हुआ ।

शब्दार्थ –सांख्ययोगौ–कर्म-संन्यास तथा कर्म-योग इन दोनों को; पृथक्–अलग-अलग; बाला–बाल बुद्धि के लोग; प्रवदन्ति–कहते हैं; एकम्–एक को; अपि–भी; आस्थितः–डटा हुआ; सम्यक्–ठीक तौर पर; उभयो–दोनों का; विन्दते–पा लेता है; फलम्–फल को ।

तिफ़्ल-ए नादाँ–अबोध बालक; जहालत–अज्ञानता; ग़र्क–ग्रस्त; कामल–सिद्ध; हासल–प्राप्त ।

भावार्थ –बाल बुद्धि के लोग ज्ञानयोग तथा कर्मयोग को पृथक्-पृथक् बतलाते हैं, पण्डित लोग नहीं । जो व्यक्ति इन दोनों में से किसी एक मार्ग पर भी ठीक तौर से डट जाता है, वह दोनों का फल प्राप्त कर लेता है ।

5. यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति सः पश्यति ।।

तुझे साँख्य से जो मिलेगा मकाम,
वही योग से पायेगा लाकलाम ।
ज़रा देख रखता अगर आँख है,
वही योग है और वही साँख्य है ।।

शब्दार्थ – यत्–जो; सांख्यैः–ज्ञानयोग द्वारा; प्राप्यते–प्राप्त होता है; स्थानम्–स्थिति; तत्–वही; योगैः–कर्मयोगियों से; एकम्–एक; सांख्यम्–ज्ञानयोग; च–और; योगम्–कर्मयोग; च–और; यः–जो; पश्यति–देखता है; सः–वह; पश्यति–वास्तव में देखता है ।

मकाम–पद; लाकलाम–निःसन्देह ।

भावार्थ – ज्ञानयोगियों द्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियों द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है । अतः जो व्यक्ति ज्ञानयोग व कर्मयोग को फलरूप में देखता है वही यथार्थ देखता है ।

6. संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ।।

राह-ए योग से जो किनारा करे,
तो मुश्किल है संन्यास पाना उसे ।
मुनि योग ही में जो कामिल हुआ,
वसाल-ए ख़ुदा उसको हासिल हुआ ।।

शब्दार्थ– संन्यासः–ज्ञानयोग; तु–तो; महाबाहो–हे महाबाहु अर्जुन; दुःखम्–कठिनाई से; आप्तुम्–प्राप्त होता है; अयोगतः–बिना कर्मयोग के; योगयुक्तः–कर्मयोगी; मुनिः–मुनि; ब्रह्म–ब्रह्म को; न चिरेण–शीघ्र ही; अधिगच्छति–प्राप्त करता है ।

वसाल-ए खुदा–प्रभु-दर्शन ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! कर्मयोग के बिना संन्यास की मनोवृत्ति पा सकना अत्यन्त कठिन है । परन्तु भगवत्स्वरूप को मनन करने वाला कर्मयोगी परमात्मा को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है ।

7. योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ।।

जो सरशार है योग में मुस्तकिल,
हवास उसके बस में हैं वो साफ़ दिल ।
जिसे जान अपनी सी हर जान है,
कहाँ उसको कर्मों से नुकसान है ।।

शब्दार्थ – योगयुक्तः–कर्मयोगी; विशुद्धात्मा–जिसकी आत्मा पवित्र है, विजितात्मा–जिसने मन को जीत लिया है; जितेन्द्रियः–जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है; सर्वभूतात्मभूतात्मा–जो सब प्राणियों को अपने आत्मा के समान समझता है; कुर्वन्–करता हुआ; अपि–भी; न–नहीं; लिप्यते–कर्म में लिप्त होता है ।

सरशार–लगा हुआ; मुस्तकिल–निरन्तर; हवास–इन्द्रियाँ ।

भावार्थ – कर्मयोगी जिसकी आत्मा पवित्र है, जिसने अपने मन तथा इन्द्रियों को जीत लिया है, सब प्राणियों का आत्मा ही जिसका आत्मा हो गया है, वह कर्म करता हुआ भी उसमें लिप्त नहीं होता ।

8. नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ।।

हक़क़ीत का है जिसको इल्म-ओ यक़ीं,
समझता है मैं कुछ भी करता नहीं ।
सुने, देखे, छू ले, कभी सूँघ ले,
वो खाये फिरे साँस ले, ऊँघ ले ।।

शब्दार्थ – एव–ही; किंचित्–कुछ भी; करोमि–करता हूँ; इति–यह; युक्तः–कर्मयोगी; मन्येत–माने; तत्त्ववित्–तत्त्व को जानने वाला; पश्यन्–देखता हुआ; शृण्वन्–सुनता हुआ; स्पृशन्–स्पर्श करता हुआ; जिघ्रन्–सूंघता हुआ; अश्नन्–खाता हुआ; गच्छन्–चलता हुआ; स्वपन्–स्वप्न लेता हुआ; श्वसन्–साँस लेता हुआ ।

हक़ीक़त–यथार्थता; इल्म–ज्ञान; यक़ीं–विश्वास ।

भावार्थ – जो कर्मयोगी है, वह सत्य को जान जाता है । इसलिये उसे देखते हुए, सुनते हुए, स्पर्श करते हुए, सूंघते हुए, खाते हुए, चलते हुए, सोते हुए और श्वास लेते हुए यही समझना चाहिए कि मैं स्वयं कुछ नहीं कर रहा हूँ ।

9. प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ।।

वो दे और वो ले और वो बोले कभी,
कभी आँख मूँदे तो खोले कभी।
मगर वो हमेशा यह कर ले कियास,
कि महसूस की सैर देखें हवास।।

शब्दार्थ – प्रलपन्–बोलते हुए; विसृजन्–त्यागते हुए; गृह्णन्–ग्रहण करते हुए; उन्मिषन्–पलकें खोलते हुए; निमिषन्–पलकें मींचते हुए; अपि–भी; इन्द्रियाणि–इन्द्रियाँ; इन्द्रियार्थेषु–इन्द्रियों के विषयों में; वर्तन्ते–बरतती है; इति–यह; धारयन्–समझता हुआ।
कियास–समझना; महसूस की सैर–इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषय में बरतती हैं।

भावार्थ – इसी प्रकार बोलते हुए, त्यागते हुए, ग्रहण करते हुए, पलकें खोलते हुए, पलकें मींचते हुए भी यह माने कि केवल इन्द्रियाँ अपने विषयों में बरत रही हैं। इस प्रकार समझ कर ऐसा माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ।

10. ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।

रहे बे-तअल्लुक करे जब अमल,
ख़ुदा ही की ख़ातिर करे सब अमल।
ख़ता से हमेशा रहेगा बरी,
कमल के न पत्ते पे ठहरे तरी।।

शब्दार्थ– ब्रह्मणि–ब्रह्म में; आधाय–अर्पण करके; कर्माणि–कर्मों को; संगम–आसक्ति को; त्यक्त्वा–त्याग कर; करोति–करता है; यः–जो; लिप्यते–लिप्त होता है; सः–वह; पापेन–पाप से; पद्मपत्रम्–कमल का पत्ता; इव–तरह; अम्भसा–जल के द्वारा।
बे-तअल्लुक–अनासक्त; खता–पाप; बरी–बचा हुआ, तरी–तरल पदार्थ।

भावार्थ – जो व्यक्ति आसक्ति को त्याग कर परमात्मा में अर्पण करके कर्म करता है वह व्यक्ति कमल के पत्ते की भाँति पाप से लिप्त नहीं होता है।

11. कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ।।

जो योगी हैं करते हैं निष्काम काम,
नहीं काम में कुछ लगावट का नाम ।
लगायें वो तन मन ख़िरद और हवास,
कि दिल की सफ़ाई से हों रूशनास ।।

शब्दार्थ– कायेन–शरीर से; मनसा–मन से; बुद्धया–बुद्धि से; केवलैः–केवल; इन्द्रियैः–इन्द्रियों से; अपि–भी; योगिनः–कर्मयोगी लोग; कुर्वन्ति–कहते हैं; संगम्–असक्ति को; त्यक्त्वा–त्याग कर; आत्मशुद्धये–अपने आत्मा की शुद्धि के लिये । लगावट–आसक्ति; ख़िरद–बुद्धि; हवास–इन्द्रियाँ; रूशनाश–प्राप्त ।

भावार्थ– कर्मयोगी लोग आसक्ति को त्याग कर, आत्मशुद्धि के लिये केवल शरीर, मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों से केवल शुद्धि के लिए कर्म करते हैं ।

12. युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ।।

जो योगी है सरशार छोड़ेगा फल,
सकून-ए अबद लायें उसके अमल ।
जो योगी नहीं वो हवस का फ़कीर,
रहे फल की ख्वाइश में हरदम असीर ।।

शब्दार्थ– युक्तः–कर्म में युक्त कर्मयोगी; कर्मफलम्–कर्म के फल को; त्यक्त्वा–छोड़ कर; शान्तिम्–शान्ति को; आप्नोति–प्राप्त करता है; नैष्ठिकीम्–निष्ठा वाली परम; अयुक्तः–जो कर्म में युक्त नहीं है, कर्मयोगी नहीं है; कामकारेण–कामना से प्रेरित होकर; फले–कर्मफल में; सक्तः–आसक्त हुआ; निबध्यते–बन्धन में बंध जाता है ।

सरशार–युक्त; सकून-ए अबद–स्थायी शान्ति; हवस–कामना; फ़कीर–दास; असीर–बन्धा हुआ ।

भावार्थ– कर्मयोगी कर्मों के फलों की आसक्ति को त्याग कर परम शान्ति को प्राप्त करता है । जो कर्मयोगी नहीं वह और आसक्ति का त्याग नहीं करता इसलिये कामना से प्रेरित होकर फल में आसक्त होने के कारण बन्धन में बंध जाता है ।

13. सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ।।

यह नौ-दर की इक राजधानी है तन,
रहे चैन से जिसमें शाह-ए बदन ।
करे खुद न औरों से ले कोई काम,
करे तर्क-ए आमाल दिल से मदाम ।।

शब्दार्थ – सर्वकर्माणि–सब कर्मों को; मनसा–मन से; संन्यस्य–छोड़ कर; आस्ते–रहता है; सुखम्–सुख से; वशी–संयमी; नवद्वारे–नौ द्वार वाली; पुरे–नगरी में; देही–देहवाला पुरुष; एव–ही; कुर्वन्–करता हुआ; कारयन्–करवाता हुआ ।

शाह-ए बदन–जीवात्मा; तर्क-ए आमाल–कर्म-त्याग; मदाम–सदा ।

भावार्थ – सब कर्मों को मन से, आन्तरिक रूप से त्याग कर, अपने को वश में रखनेवाला कर्मयोगी नौ द्वारों वाले इस शरीररूपी नगर में सुखपूर्वक रहता है । इस भावना से रहता हुआ वह न कोई कर्म करता है, न करवाता है ।

14. न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ।।

वो मालिक अमल और न आमल बनाये,
न कर्मों को कर्मों के फल से मिलाये ।
ये माया की हैं कार-फरमाइयाँ,
यह माया ही करती है सब कुछ ऐयाँ ।।

शब्दार्थ – कर्तृत्वम्–कर्तापन को; कर्माणि–कर्मों को; लोकस्य–लोगों के; सृजति–बनाता है; कर्मफलसंयोगम्–कर्मों के फल के प्रति संयोग को, आसक्ति को; स्वभावः–मनुष्य का स्वभाव या प्रकृति; तु–तो; प्रवर्तते–कार्य करते हैं ।

माया की कारफ़रमाइयाँ–माया का खेल; ऐयाँ–प्रगट ।

भावार्थ – प्रभु व्यक्तियों के न तो कर्तापन की, न कर्मों की एवं न कर्मफल के संयोग की रचना करते हैं । यह सब तो प्रकृति के गुणों द्वारा ही किया जाता है ।

15. नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।।

न लेगा किसी से भी परमात्मा,
किसी की न कोई किसी की ख़ता ।
जहालत है उरफ़ाँ पे छाई हुई,
तो दुनियाँ है चक्कर में आई हुई ।।

शब्दार्थ – आदत्ते–स्वीकार करता है; कस्यचित्–किसी का; पापम्–पाप; च–और; एव–ही; सुकृतम्–अच्छा काम; विभुः–परमात्मा; अज्ञानेन–अज्ञान से; आवृतम्–आच्छादित हुआ है; ज्ञानम्–ज्ञान; तेन–उसी से; मुह्यन्ति–मोह में पड़ जाते हैं; जन्तवः–प्राणी ।

न कोई–पुण्य; ख़ता–पाप; जहालत–अज्ञानता; उरफ़ाँ– ज्ञान ।

भावार्थ – सर्वव्यापी परमेश्वर न किसी के पाप कर्म को और न किसी के शुभ कर्म को ही ग्रहण करता है, किन्तु अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, उसी से सब अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे हैं ।

16. ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ।।

मगर जिनको हासिल है उरफ़ाँ का नूर,
करे ज्ञान उनकी जहालत को दूर ।
कि सूरज हो जब ज्ञान का ज़ूफ़िशाँ,
तो परमात्मा की हो सूरत ऐयाँ ।।

शब्दार्थ – ज्ञानेन–ज्ञान से; तु–तो; तत्–वह; अज्ञानम्–अज्ञान; येषाम्–जिनका; नाशितम्–नष्ट कर दिया गया;

आत्मनः—अपना,; तेषाम्—उनका; आदित्यवत्—सूर्य के प्रकाश के समान; ज्ञानम्—ज्ञान; प्रकाशयति—प्रकाशित कर देता है; तत्—उस; परम्—परम ब्रह्म को ।

हासिल—प्राप्त; नूर—ज्योति; जूफ़िशाँ—प्रकाशित; ऐयाँ—प्रगट ।

भावार्थ — परन्तु जिनका अज्ञान परमात्मा के ज्ञान से नष्ट हो जाता है, उनका ज्ञान सूर्य के प्रकाश की भाँति उस परमात्मा को प्रकाशित कर देता है ।

17. तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ।।

जो दें मन और अक़्ल उसमें लगा,
उसी में हों कायम उसी पर फ़िदा ।
पहुँच जायें उस तक तो वापस न आयें,
करे ज्ञान दूर उनकी सारी ख़तायें ।।

शब्दार्थ— तत्-बुद्धयः—उसमें बुद्धि वाले; तत्-आत्मानः—उसमें आत्मा वाले; तत् निष्ठा—उसमें निष्ठावाले; तत् परायणाः—उसके आश्रय में अपने को छोड़ देने वाले; गच्छन्ति—जाते हैं; अपुनरावृत्तिम्—पुनर्जन्म को नहीं; ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः—ज्ञान से धुल गये हैं पाप या दोष जिनके ।

फ़िदा—न्योछावर; ख़तायें—पाप ।

भावार्थ — जिनकी बुद्धि परमात्मा में रम जाती है, जिनका अन्तःकरण उसी में लीन हो जाता है, जो तन्निष्ठ (काम में व्यस्त) हो जाते हैं ऐसे तत्परायण व्यक्ति ज्ञान के द्वारा पापरहित होकर परमगति को प्राप्त हो जाते हैं ।

18. विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ।।

जो ज्ञानी है यक्साँ नज़र उसको आये,
वो हाथी हो कुत्ता हो या कोई गाय ।
वो हो ब्राह्मण, आलम-ओ बुर्दवार,
कि चाण्डाल नापाक मुरदार ख़्वार ।।

शब्दार्थ – विद्याविनयसम्पन्ने–विद्या तथा विनय से युक्त; ब्राह्मणे–ब्राह्मण में; गवि–गो में; हस्तिनि–हाथी में; शुनि–कुत्ते में; च–और; एव–ही; श्वपाके–चाण्डाल में; पण्डिताः–पण्डित लोग; समदर्शिनः–सम दृष्टि रखते हैं ।

यकसाँ–समान रूप से; आलम-ओ बुर्दवार–विद्या-विनययुक्त; नापाक–अपवित्र; मुरदार-ख़्वार–चाण्डाल ।

भावार्थ – विद्या तथा विनय से युक्त विद्वान् गाय, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल को समान दृष्टि से देखते हैं ।

19. इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ।।

मुसावात में दिल लगाये हुए,
जन्म पर वो हैं काबू पाये हुए ।
है बे-ऐब-ओ यक्साँ जो जात-ए ख़ुदा,
रहे ज़ात में उसकी कायम सदा ।।

शब्दार्थ – इह–यहाँ; एव–ही; तैः–उन्होंने; जितः–जीत लिया; सर्गः–संसार; येषाम्–जिनका; साम्ये–समता में; स्थितम्–ठहरा हुआ है; हि–निश्चय से; समम्–समावस्थावाला; तस्मात्–अतः; ब्रह्मणि–ब्रह्म में; ते–वे; स्थिताः स्थित रहते हैं ।

मुसावात–समदर्शिता; बे-एब–निर्दोष, ज़ात-ए ख़ुदा–स्वयं ब्रह्म; कायम–स्थित ।

भावार्थ – जिनका मन साम्यावस्था में स्थिर हो जाता है वे यहीं के यहीं, इस लोक में ही पृथ्वी पर ही संसार को जीत लेते हैं, क्योंकि ब्रह्म भी निर्दोष तथा सम है, सब में एक समान है इसलिये ये साम्य-बुद्धिवाले व्यक्ति ब्रह्म में स्थिर रहते हैं ।

20. न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ।।

वो आरफ़ ख़ुदा में रहे उस्तवार,
न उलझन उसे हो न दिल बेकरार।
मुसर्रत जो पाये तो शादाँ न हो,
मुज़र्रत जो पहुँचे पशेमाँ न हो।।

शब्दार्थ – प्रहृष्येत्–प्रसन्न हो; प्रियम्–प्रिय वस्तु को; प्राप्य–प्राप्त करके; उद्विजेत्–उद्विग्न हो; च–और; अप्रियम्–अप्रिय वस्तु को; प्राप्य–प्राप्त करके; स्थिरबुद्धिः–जिसकी बुद्धि स्थिर है; असंमूढः–जो मोह में नहीं फँसा; ब्रह्मवित्–ब्रह्मवेता; ब्रह्मणि–ब्रह्म में; स्थितः–स्थित है।

आरफ़–ब्रह्मज्ञानी; उस्तवार–स्थित; बेकरार–विक्षिप्त; मुज़र्रत–सुख; पशेमाँ–खिन्न।

भावार्थ – जो पुरुष प्रिय वस्तु को प्राप्त कर प्रसन्न नहीं होता, अप्रिय को प्राप्त कर व्याकुल नहीं होता, जिसकी बुद्धि स्थिर है, जो मोह में नहीं फंसता, वह ही ब्रह्म में स्थित है।

21. बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते।।

न आशिया-ए ज़ाहिर से उसको लगन,
है आनन्द से आत्मा में मगन।
जो ब्रह्म योग ही से सरोकार है,
दवामी मुसर्रत में सरशार है।।

शब्दार्थ – बाह्यस्पर्शेषु–बाहर के विषयों के स्पर्श में; असक्तात्मा–अनासक्त पुरुष; विन्दति–प्राप्त करता है; आत्मनि्–आत्मा में; यत्–जो; सुखम्–सुख को; सः–वह; ब्रह्मयोगयुक्तात्मा–ब्रह्म के साथ युक्त होने वाला; सुखम्–सुख को; अक्षयम्–असीम; अश्नुते–भोगता है।

अशिया-ए ज़ाहिर–बाह्य विषय; दवामी-मुसर्रत–अक्षय सुख; सरशार–तल्लीन।

भावार्थ – ऐसा मुक्त पुरुष भौतिक इन्द्रिय सुख की ओर आकृष्ट नहीं होता, अपितु सदा समाधि में रहकर अपने अन्तःकरण में आनन्द का अनुभव करता है। इस प्रकार स्वरूप सिद्ध व्यक्ति परमात्मा में एकाग्रचित होकर असीम सुख भोगता है।

22. ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।

तअल्लुक से पैदा जो होता है सुख,
उसी से नुमायाँ हो आखिर में दुःख।
जो सुख का भी आग़ाज़-ओ इल्जाम है,
तो दाना कहाँ उससे खुशकाम है।।

शब्दार्थ – ये–जो; हि–निश्चय से; संस्पर्शजाः–बाह्य विषयों के साथ स्पर्श; भोगाः–भोग; दुःखयोनयः–दुःख के कारण हैं; एव–ही; ते–वे; आद्यन्तवन्तः–आदि तथा अन्त वाले हैं; कौन्तेय–हे कुन्ती के पुत्र अर्जुन; तेषु–उनमें; रमते–रत होता है, आनन्द लेता है; बुधः–बुद्धिमान् व्यक्ति।

तअल्लुक–सम्बन्ध; नुमायाँ–प्रगट; आगाज़–आदि; इंजाम–अन्त; दाना–बुद्धिमान्; खुशकाम– सन्तुष्ट।

भावार्थ – हे अर्जुन! बाह्य विषयों के स्पर्श से, संयोग से जो भोग प्राप्त होते हैं वे दुःख को ही पैदा करते हैं, इन भोगों का आदि सुख है और अन्त दुःख है। विवेकी पुरुष उन भोगों में कभी लिप्त नहीं होता।

23. शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।।

न छोड़ा अभी जिसने तन का कफ़स,
मग़र कर लिये ज़ेर तैश-ओ हवस।
असीर-ए बदन रह के आज़ाद है,
तो इन्साँ वो योगी है दिलशाद है।।

शब्दार्थ – शक्नोति–कर सकता है; इह–यहाँ; एव–ही; यः–जो; सोढुम्–सहन करने में; प्राक्–पहले; शरीरविमोक्षणात्–शरीर को त्याग देने

से; कामक्रोधोद्भवम्–काम तथा क्रोध से पैदा होने वाले; वेगम्–वेग को; सः–वह; युक्तः–युक्त, कर्मयोगी; सः–वह; सुखी–सुखी; नरः–मनुष्य ।

कफ़स–पिंजरा; ज़ेर–वश; तैश–क्रोध; हवस–काम; असीर-ए बदन–शरीर रखते हुए ।

भावार्थ – शरीर के त्याग से पूर्व, जो काम और क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को रोक लेता है वही योगी है, वही सुखी है ।

24. योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ।।

वो योगी रहे जिसके मन में सरूर,
मुसर्रत हो दिल में तो सीने में नूर ।
समझ लीजिये हक़ से वासल उसे,
कि हो ब्रह्म निरवान हासल उसे ।।

शब्दार्थ – यः–जो; अन्तःसुख–अपने अन्दर सुख मानने वाला; अन्तः आरामः–अपने अन्दर ही आराम पाने वाला; अन्तर्ज्योतिः– अपने भीतर ही ज्योति देखने वाला; एव–ही; यः–जो; सः–वह; ब्रह्मनिर्वाणम्–महान् मुक्ति को; ब्रह्मभूतः–ब्रह्ममय हुआ; अधिगच्छति–पा जाता है ।

सरूर–शान्ति; मुसर्रत–आनन्द ।

भावार्थ– जो व्यक्ति अपने भीतर ही सुख का अनुभव करता है, अपने भीतर ही ज्योति पा जाता है, वह योगी ब्रह्मरूप हो जाता है और वह मुक्ति को भी प्राप्त कर लेता है ।

25. लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ।।

ऋषि मिट चुके जिनके जुर्म-ओ-कसूर,
जिन्हें ख़ुद पे काबू दुई से जो दूर ।
जो सबकी भलाई के ख़्वाहा रहें,
मिले ब्रह्म निरवान आखिर उन्हें ।।

शब्दार्थ – लभन्ते–प्राप्त करते हैं; ब्रह्मनिर्वाणम्–मुक्ति; ऋषयः–ऋषि लोग; क्षीणकल्मषाः–सारे पापों से रहित; छिन्नद्वैधाः–जिनकी द्वैत बुद्धि छूट गई है, जो सब में समान बुद्धि से बरतते हैं; यतात्मानः–जिन्होंने अपने को संयम में ढाल लिया है; सर्वभूतहिते–सब प्राणियों के हित में; रताः–लगे रहते हैं ।

ज़ुर्म-ओ कसूर–पाप; ख़ुद–मन; दुई–द्वैत; ख़्वाहाँ–इच्छुक ।

भावार्थ – वे ऋषि जिनकी द्वैत-बुद्धि छूट गई है । जिनके पाप क्षीण हो गये हैं । जिन्होंने अपने को संयम में ढाल लिया है, जो सब प्राणियों के हित में रत हैं, वे मुक्ति को प्राप्त होते हैं ।

26. कामक्रोधविमुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ।।

न गुस्सा है जिसमें न रंग-ए हवस,
ख़्याल-ओ तबीयत पे है जिनका बस ।
मिला आत्मा का जिन्हें ज्ञान है,
उन्हें हर तरफ ब्रह्म निरवान है ।।

शब्दार्थ – कामक्रोधवियुक्तानाम्–जो काम व क्रोध से रहित हो गये हैं; यतीनाम्–साधु पुरुषों की; यतचेतसाम्–जिन्होंने अपने मन को संयत कर लिया है, वश में कर लिया है; अभितः–चारों ओर; ब्रह्मनिर्वाणम्–महान् मुक्ति; वर्तते–होता है; विदितात्मनाम्–जो आत्मदर्शी हैं ।

रंग-ए हवस–काम; ख्याल–मन; तबीयत–स्वभाव ।

भावार्थ – जो स्वरूप सिद्ध आत्मसंयमी हैं, आत्मा को जान गये हैं, जो काम तथा क्रोध से रहित हो गये हैं, जिन्होंने अपने मन को जीत कर अपने वश में कर लिया है । उनकी मुक्ति निकट भविष्य में सुनिश्चित है ।

27. स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ।।

मुनि जो न महसूस से दिल लगाये,
मियाने दो अबरू नज़र को जमाये।
बरूँ और दरूँ के बराबर हों दम,
मसावी चले नाक से ज़ेर-ओ बम।।

शब्दार्थ – स्पर्शान्–विषयों के स्पर्शों को; कृत्वा–करके; बहिः–बाहर; बाह्यान्–बाहर के; चक्षुः–दृष्टि को; च–और; एव–ही; अन्तरे–बीच में; भ्रुवोः–भौंहों के; प्राणापानौ–प्राण तथा अपान इन दोनों को; समौ–सम; कृत्वा–करके; नासाभ्यन्तरचारिणौ–नासिका के बीच में चलने वाले।

महसूस–बाह्य विषय; मियाने दो अबरू–दो नेत्रों के भ्रुवों के बीच में; बरूँ–प्राण, दरूँ–अपान; मसावी–बराबर; ज़र-ओ बम–श्वासों की गति।

भावार्थ – बाह्य विषयों के स्पर्श को बाहर करके, दृष्टि को भौहों के बीच में जमाकर, नासिका में चलने वाले प्राण तथा अपान को समान करके अभ्यासी जन परमतत्त्व को प्राप्त करते हैं।

28. यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः।।

हवास-ओ दिल-ओ अक़्ल कर ले जो राम
तलाश-ए निजात उसका दिन रात काम।
न डर है, न गुस्सा, न लालच कहीं,
निजात उस मुनि को मिली बिलयकी।।

शब्दार्थ – यतेन्द्रियमनोबुद्धिः–जीत ली हैं इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि जिसने; मुनिः–परमेश्वर का सदा मनन करनेवाला; मोक्षपरायाणः–मोक्ष के लिये तत्पर; विगतेच्छाभयक्रोधः–इच्छा, भय तथा क्रोध जिसका हट गया है; यः जो; सदा–सदा; मुक्तः–मुक्त; एव–ही; सः–वह।

हवास–इन्द्रियाँ; दिल–मन; अक्ल–बुद्धि; राम–वश में; तलाश-ए निजात–मोक्षपरायण; बिलयकीं–निःसन्देह।

भावार्थ – इन्द्रियों, मन व बुद्धि को वश में करने वाला योगाभ्यास की प्रक्रिया द्वारा मोक्ष पाने के लिये तत्पर, इच्छा, भय व क्रोध से रहित जो प्रयत्न करता है वह सदा मुक्त ही है।

29. **भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।**
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।।

मुझे शाह-ए अरज-ओ समा जो कहे,
जो समझे है यज्ञ तप मेरे ही लिये ।
जो माने मुझे ख़ल्क का ग़मगसार,
उसी को मिलेगा सकून-ओ करार ।।

शब्दार्थ – भोक्तारम्–भोगने वाले को; यज्ञतपसाम्–यज्ञों और तपों के; सर्वलोकमहेश्वरम्–सब लोकों के महेश्वर को; सुहृदम्–सुहृद को; सर्वभूतानाम्–सब प्राणियों के; ज्ञात्वा–जानकर; माम्–मुझे; शान्तिम्–शान्ति को; ऋच्छति–प्राप्त होता है ।

शाह-ए अरज–लोकों का महान ईश्वर; ख़ल्क–प्राणियों; गमगसार–हितैषी; सकून-ओ करार–स्थायी शान्ति ।

भावार्थ – जो मेरे विषय में यह जानता है कि मैं यज्ञ और तप का भोक्ता हूँ, सब लोकों का लोकनायक हूँ, सब प्राणियों का सुहृद हूँ–जो मेरे बतलाये मार्ग पर चलता है वह शान्ति को प्राप्त होता है ।

अध्याय में दर्शायी गई सम्पूर्ण विभूतियाँ सर्वव्यापी ईश्वर की हैं । क्योंकि श्रीकृष्ण योगावस्था में अर्जुन को उपदेश कर रहे हैं उस अवस्था में "मैं" का अर्थ जीवात्मा में बैठे परमतत्त्व "परमात्मा" से है । जागृत अवस्था में शरीर को, स्वप्नावस्था में मन को, सुषुप्ति अवस्था में आत्मा को और योगावस्था में परमात्मा को "मैं" के नाम से जाना जाता है ।

छठा अध्याय

कर्मयोग ध्यानयोग की ही सीढ़ी है । कर्मफल का परित्याग करने वाला व्यक्ति ही संन्यासी एवं योगी है, न कि वह व्यक्ति जोकि अग्निहोत्र क्रियाओं का त्याग करता है । मानव को अपनी आत्मा का उद्धार स्वयं ही करना चाहिये । व्यक्ति स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है । स्वयं पर नियंत्रण कर लेने पर व्यक्ति को कभी मान-अपमान आदि के भाव दुःखी नहीं करते हैं । समबुद्धि होकर योगसाधना करनी चाहिये । योग का अभ्यास करने वाले को एकांत जीवन व्यतीत करना चाहिये । उसे किसी भी भोग की इच्छा नहीं करनी चाहिये । मानव-मन बड़ा चंचल, प्रमादी, सुदृढ़ एवं बलवान् है । इसको वश में रखना उतना ही कठिन है जितना वायु को बांधना । परन्तु मन को विवेक, वैराग्य एवं अभ्यास से नियंत्रण में किया जा सकता है ।

मनुष्य को उचित मात्रा में ही भोजन ग्रहण करना चाहिये । इसी प्रकार सोना-जागना भी अधिक नहीं होकर युक्त ही होना चाहिये । इस प्रकार अभ्यास करने पर जब मानव-मन स्थिर हो जाता है तो स्वतः ही सारी इच्छाओं से उसकी निवृति हो जाती है । सभी प्रकार की कामनाओं को त्यागकर और मन के द्वारा इन्द्रियों को सभी ओर से भलीभाँति रोककर क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरति को प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार निरंतर आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ योगी सुखपूर्वक परमात्मा की अनुभूति करके अनंत आनंद का अनुभव करता है । योगी सबको समदृष्टि से देखता है । योग से भ्रष्ट होने पर भी मानव की दुर्गति नहीं होती है । वह दूसरे जन्म में या तो योगियों के ही कुल में उत्पन्न होता है या श्रीमानों के कुल में उत्पन्न होता है ।

1. अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ।।

सुन अर्जुन जो इन्सां करे सब अमल,
फ़रायज़ बजा लाये ढूंढे न फल ।
वो योगी है और संन्यासी ज़रूर,
न वो जो रहे आग क्रिया से दूर ।।

शब्दार्थ – अनाश्रितः–आश्रय का सहारा न रखता हुआ; कर्मफलम्–कर्म के फल को; कार्यम्–करने योग्य; करोति–करता है; यः–जो; सः–वह; च–और; निरग्निः–अग्निहोत्र न करने वाला; अक्रियः–कर्म न करने वाला ।

फ़रायज़–कर्तव्य; बजा–पूरा करना ।

भावार्थ – जो व्यक्ति अपने कर्तव्य कर्म को करते हुए कर्म फल पर आश्रित नहीं रहता वह संन्यासी भी है, योगी भी है । केवल अग्नि का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं है और केवल क्रियाओं को त्याग कर निठल्ला बैठने वाला योगी नहीं है ।

2. यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ।।

वही जिसको संन्यास कहते हैं लोग,
सुन अर्जुन वही है वही खास योग ।
कि खुद योग में मर्द-ए कामल नहीं,
जो छोड़े न फ़िक्र-ए चुनाँ-ओ चुनीं ।।

शब्दार्थ – यम्–जिस बात को; संन्यासम्–संन्यास; इति–इसप्रकार; प्राहु–कहते हैं; योगम्–योग; तम्–उसे; विद्धि–समझ; पाण्डव–हे अर्जुन; न– नहीं; हि–निश्चय से; असंन्यस्त-संकल्पः–संकल्प को न त्यागने वाला; भवति–होता है; कश्चन–कोई भी ।

मर्द-ए कामल–सिद्ध; चुन-ओ चुनी–साँसारिक संकल्प ।

भावार्थ –हे अर्जुन ! जिसे संन्यास कहते हैं उसी को 'योग' समझो, क्योंकि इच्छाओं का त्याग न करने वाला कोई भी व्यक्ति योगी नहीं हो सकता ।

3. आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।।

मुनि वो जिसे योग दरकार है,
अमल-ही-अमल उसका हथियार है ।
मगर योग से जब वो हो कामगार,
तो हथियार है फिर सकून-ओ करार ।।

शब्दार्थ –आरुरुक्षोः–ऊपर चढ़ने की इच्छा वाले; मुनेः–मननशील व्यक्ति के लिये; योगम्–कर्मयोग को; कारणम्–साधन; उच्यते–कहा

जाता है; योगारूढस्य—जो कर्मयोग पर पहुँच गया है; तस्य—उसके; एव—ही; शमः—कर्मफल के संकल्पों का शमन; कारणम्—साधन; उच्यते—कहा जाता है ।

दरकार—इच्छा; कामगार—आरूढ़; सकून—शान्ति; करार—चैन ।

भावार्थ —जब साधक 'कर्मयोग' के लक्ष्य को पाने के लिये ऊपर चढ़ रहा होता है तब उसका साधन 'कर्म' होता है, जब वह लक्ष्य पर आरूढ़ हो जाता है, वहाँ तक पहुँच जाता है तब वहाँ टिके रहने का साधन शान्ति होता है ।

4. यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ।।

न महसूस अशिया से जिसको लगन,
अमल से लगावट न उसमें मगन ।
नहीं जिसको फ़िक्र-ए चुनाँ-ओ-चुनीं,
कहें योग का उसको मसनद नशीं ।

शब्दार्थ —यदा—जब; हि—निश्चय से; इन्द्रियार्थेषु—इन्द्रियतृप्ति में; कर्मसु—कर्मों में; अनुषज्जते—आसक्त होता है; सर्वसंकल्पसंन्यासी—सब संकल्पों को त्याग देने वाला; योगारूढः—कर्मयोग पर पहुँचा हुआ; तदा—तब; उच्यते—कहलाता है ।

महसूस—इन्द्रियों के विषय; लगन—आसक्ति; मसनद नशीं—योगारूढ़ ।

भावार्थ —जब कोई व्यक्ति इन्द्रियों के विषयों में या कर्मों में आसक्त नहीं रहता, सब संकल्पों को त्याग देता है, तब वह 'योगारूढ़' कहलाता है ।

5. उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।

मुनासिब नहीं ख़ुद को इन्साँ गिराये,
वो ख़ुद को उभारे वो ख़ुद को उठाये ।
कि इन्साँ ख़ुद अपना ही ग़मख्वार है,
वो अपना ही बदख्वाह-ओ गद्दार है ।।

शब्दार्थ —उद्धरेत्—उद्धार करे; आत्मना—अपने द्वारा; आत्मानम्—अपना; आत्मानम्—अपने को; अवसादयेत्—नीचे गिराये; आत्मा—स्वयं; एव—ही; हि—निश्चय से; आत्मनः—अपना; बन्धुः—मित्र है;

आत्मा–स्वयं; एव–ही; रिपुः–शत्रु है; आत्मनः–अपना ।
मुनासिब–उचित; ग़मख़्वार–हितैषी; बदख्वाह–शत्रु; गद्दार–द्रोही ।

भावार्थ – व्यक्ति को चाहिये कि वह अपना उद्धार स्वयं ही करे, स्वयं को कभी नीचे न गिरने दे । व्यक्ति स्वयं ही अपना मित्र है, स्वयं ही अपना शत्रु है ।

6. बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।

करे नफ़्स को अपने शेर-ए नर्गी,
तो ख़ुद अपना ग़मख़्वार है बिलयर्की ।
मगर जिसको काबू नहीं नफ़्स पर,
वो दुश्मन है अपने लिये सरबसर ।।

शब्दार्थ– बन्धुः–मित्र; आत्मा–आत्मा; आत्मनः–आत्मा का; तस्य–उसका; येन–जिसने; आत्मा–आत्मा; एव–ही; आत्मना–आत्मा से; जितः–जीत लिया; अनात्मनः–जिसने मन को वश में नहीं किया है; तु–तो; शत्रुत्वे–शत्रुता में; वर्तते–बर्तता है; आत्म एव–स्वयं ही; शत्रुवत्–शत्रु की भाँति ।
नफ़्स–मन; ज़ेर-ए नर्गी–वश में; बिलयर्की–निःसन्देह; सरबसर–बिल्कुल ।

भावार्थ – जिसने अपने मन को जीत लिया है उसके लिये मन सर्वश्रेष्ठ मित्र है । परन्तु जो ऐसा नहीं कर पाया उसके लिए मन सबसे बड़ा शत्रु है ।

7. जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।।

जिसे नफ़्स पर अपने है इख़्त्यार,
उसी को है परमात्मा में करार ।
हो गर्मी कि सर्दी हो ग़म या ख़ुशी,
हो इज़्ज़त कि जिल्लत हैं यकसां सभी ।।

शब्दार्थ –जितात्मनः–जिसने मन को जीत लिया है उसके; प्रशान्तस्य–जो सम्पूर्ण रूप से शान्त हो गया है उसके; परमात्मा–परम आत्मा; समाहितः–सम रहता है; शीतोष्ण-सुख-दुःखेषु–सर्दी-गर्मी, सुख तथा दुःख में; तथा–और; मानापमानयो–मान तथा अपमान में ।

इख़्त्यार—वश में; करार—स्थिति; जिल्लत—अपमान; यकसाँ—समान।

भावार्थ —जिसने अपने मन को जीत लिया है, उसने पहले ही परमात्मा को प्राप्त कर लिया है, जो सम्पूर्ण रूप से शान्त हो गया है, ऐसा व्यक्ति सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, मान-अपमान में सम रहता है।

8. **ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।**
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ट्राश्मकाञ्चनः।।

वो सरशार योगी रहे उस्तवार,
मिले इल्म-ओ उरफ़ाँ में जिसको करार।
हवास उसके हैं ज़ेर मज़बूत दिल,
हैं यक्साँ उसे ज़र हो मिट्टी कि सिल।।

शब्दार्थ —ज्ञान-विज्ञान-तृप्तात्मा—ज्ञान तथा विज्ञान से जिसका अन्तःकरण तृप्त है; कूटस्थः—जो अपरिवर्तनीय है; विजितेन्द्रियः—जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है; युक्तः—भगवान् के साथ जुड़ा हुआ; इति—यह; उच्यते—कहा जाता है; योगी—योगी; सम-लोष्ट्र-अश्म-काञ्चनः—जो मिट्टी के ढेले, पत्थर तथा सुवर्ण को एक समान समझता है।

उस्तवार—समान; इल्म—ज्ञान; उरफाँ—विज्ञान; हवास—इन्द्रियाँ; ज़ेर—वश में; ज़र—सोना; सिल—पत्थर।

भावार्थ —जिसका आत्मा, ज्ञान तथा विज्ञान से तृप्त है, जो कूटस्थ है, अपरिवर्तनशील है, जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है, जिसके लिये मिट्टी का ढेला, पत्थर और सुवर्ण एक-समान हैं, ऐसे कर्म-योगी को भगवान् से जुड़ा हुआ कहा जाता है।

9. **सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।**
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।।

वो योगी है अफ़जल जिसे हों सब एक,
सगे दोस्त, बेलाग, एहबाब नेक।
हों सालिस कि दुश्मन दिलाज़ार हों,
वो धर्मात्मा हों कि बदकार हों।।

शब्दार्थ —सुहृद—अच्छे हृदय वाला; अरि—शत्रु; उदासीन—पक्षपात रहित;

मध्यस्थ–दोनों पक्षों को मान्य; द्वेष्य–जिससे द्वेष किया जाये; बन्धुषु–बान्धवों में; साधुषु– धर्मात्मा पुरुषों में; अपि–भी; च–और; पापेषु–पापियों में; समबुद्धिः–समान भाव रखने वाला; विशिष्यते–विशेष होता है ।

अफ़ज़ल–श्रेष्ठ; बेलाग–उदासीन; एहबाब–पुरुष; सालिस–मध्यस्थ; दिलाज़ार–कष्ट पहुँचाने वाला; बदकार–दुराचारी ।

भावार्थ – सुहृद, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष करने योग्य, बन्धु, साधु तथा पापी इन सब में जो सम बुद्धि रखता है, वह व्यक्ति अत्यंत श्रेष्ठ है ।

10. योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।।

जो योगी है वो योग तनहा कमाये,
अलग रह के दिल आत्मा में लगाये ।
रहे उसके काबू में तन हो कि मन,
उमीद-ओ हवस से न हो कुछ लगन ।।

शब्दार्थ– योगी–कर्मयोगी; युञ्जीत–जोड़े; सततम्–लगातार; आत्मानम्–अपने मन को; रहसि–एकान्त में; स्थितः–बैठकर; यतचित्तात्मा–चित्त तथा आत्मा जिसने वश में कर लिया है; निराशीः–वासना-रहित होकर; अपरिग्रहः–संचय की भावना से रहित होकर ।

तनहा–अकेला; हवस–लोभ ।

भावार्थ – योगी को चाहिये कि एकान्त में अकेला बैठकर अपने चित्त व आत्मा को वश में रखकर, वासनारहित होकर, परिग्रह की भावना को छोड़कर अपने मन को परमात्मा के साथ लगातार जोड़े ।

11. शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।।

कुशा घास पर मृग छाला बिछाये,
फिर उस मृग छाला पे चादर लगाये ।
जमा उसपे आसन करे एतकाफ़,
न ऊँचो न नीची जगह पाक साफ़ ।।

शब्दार्थ– शुचौ–पवित्र; देशे–स्थान में; प्रतिष्ठाप्य–स्थापित करके; स्थिरम्–स्थिर; आसनम्–आसन को; आत्मनः–अपने; अति उच्छ्रितम्–बहुत ऊँचा; अतिनीचम्–बहुत नीचा; चैलाजिन-कुशोत्तरम्–मुलायम वस्त्र व मृगचर्म, कुश (विशेष प्रकार की घास)।

चर्म–चमड़ी; कुशा–विशेष प्रकार की घास, एतकाफ़–उपासना, पाक–शुद्ध।

भावार्थ– स्वच्छ स्थान पर अपना स्थिर आसन बिछाकर, ऐसी जगह जो न अधिक ऊँची हो, न अधिक नीची हो और आसन पर पहले कुशा, फिर मृगछाला और उस पर वस्त्र बिछाकर योग साधना करें।

12. तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।।

सकूँ चित्त को दे लौ मुझी से लगाये,
हवास-ओ तख़ैयल को काबू में लाये।
जमे अपने आसन पे वो मुस्तकिल,
करे योग को साध कर पाक दिल।।

शब्दार्थ– तत्र–वहाँ; एकाग्रम्–एकाग्र; कृत्वा–करके; यतचित्तेन्द्रियक्रियः–चित्त तथा इन्द्रिय की क्रियाओं को वश में करके; उपविश्य–बैठकर; आसने–आसन पर; युञ्ज्यात्–जोड़े; योगम्–योग को; आत्मविशुद्धये–हृदय की शुद्धि के लिये।

सकूँ–शान्त; हवास–इन्द्रियाँ; तख़ैयल–मन; मुस्तकिल–स्थिर।

भावार्थ– वहाँ मन को एकाग्र कर, चित्त तथा इन्द्रियों की क्रियाओं को रोक कर, आसन पर बैठकर आत्मा मन को एक बिन्दु पर स्थिर करके हृदय को शुद्ध करने के लिये योगाभ्यास करें।

13. समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।

सर-ओ पुश्त-ओ गरदन झुकाये न वो,
बदन को हिलाये जुलाये न वो।
जमाये नज़र नाक की नोक पर,
निगाहें न भटकें इधर और उधर।।

शब्दार्थ – समम्–सीधा; कायशिरोग्रीवम्–काया, सिर तथा गर्दन को; धारयन्–रखता हुआ; अचलम्–बिना हिले-डुले; सम्प्रेक्ष्य–देखकर; नासिकाग्रम्– नासिका के अग्रभाग को; स्वयम्–अपने; दिशः– इधर-उधर दिशाओं को; च–और; अनवलोकयन्–न देखता हुआ।

सर–सिर; पुश्त–पीठ; बदन–काया।

भावार्थ – अपनी पीठ, सिर और गर्दन को एक सीध में तथा अचल रखकर अर्थात् बिना हिले-डुले, स्थिर होता हुआ, नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य किसी दिशा में न देखते हुए ईश्वर में ध्यान लगाए।

14. प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः।।

रहे पुर-सकूँ बेखतर मुस्तकिल,
मुजर्रद पे कायम हो काबू में दिल।
मेरी ज़ात से लौ लगाये हुए,
मेरे ध्यान में दिल जमाये हुए।।

शब्दार्थ – प्रशान्तात्मा–शान्त मन वाला; विगतभीः–भयरहित; ब्रह्मचर्यव्रते–ब्रह्मचर्य के व्रत में; स्थितः–टिका हुआ; संयम्य–वश में करके; मच्चितः–मुझ में चित्त डालकर; युक्त–जुड़ा हुआ; आसीत–बैठे; मत्परः–मुझ में परम लक्ष्य।

पुरसकूँ–प्रशान्त; बेखतर–निर्भय; मुस्तकिल–सदा; मुजर्रद–ब्रह्मचर्य; कायम–स्थित; काबू–वश; ज़ात–आत्मा; लौ–चित्त।

भावार्थ – प्रशान्त मनवाला, भय से रहित, ब्रह्मचर्य के व्रत में टिका हुआ, मन का संयम करके, प्रभु में ही चित्त लगाकर, प्रभुपरायण होकर, प्रभु को ही अपना चरम लक्ष्य बनाए।

15. युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।।

अगर योग वो यूँ कमाता रहे,
तो मन उसका काबू में आता रहे।
सकूँ आत्मा में समा जायेगा,
वही मेरा निरवान पा जायेगा।।

शब्दार्थ – युञ्जन्–जोड़ता हुआ; एवम्–इस प्रकार; सदा–सदा; आत्मानम्–अपने को; नियतमानसः–जिसका मन उसके वश में है; शान्तिम्–शान्ति को; निर्वाणपरमाम्–परम निर्वाण वाली को; मत्संस्थाम्–मुझ में स्थित को, मुझ में लबालब भरी को; अधिगच्छति–प्राप्त कर लेता है ।

भावार्थ – जो इस प्रकार सदा अपने को प्रभु के साथ जोड़ लेता है, जिसका मन उसके वश में रहता है, ऐसा योगी, प्रभु में अनन्त भरी हुई, परमनिर्वाण वाली शान्ति को प्राप्त कर लेता है ।

16. नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ।।

न हासिल करे योग बसयार ख्वार,
न वो जिसका हो भूख से हाल ज़ार ।
बहुत सोने वाला भी पाये न योग,
बहुत जागने से भी आये न योग ।।

शब्दार्थ – अति–बहुत; अश्नतः–खाने वाले का; तु–तो; अस्ति–है; च–और; एकान्तम्–बिल्कुल; अनश्नतः–न खाने वाले का; अति–बहुत; स्वप्नशीलस्य–सोने के स्वभाव वाले का; जाग्रतः–जागने वाले का; एव–ही ।
बसयार ख्वार–पेटू; जार–व्याकुल ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! योग उसके लिये नहीं है जो बहुत खाता है, न उसके लिए है जो बिल्कुल खाता ही नहीं है । यह उसके लिये भी नहीं है जो अत्यधिक सोता है, न उसके लिये है जो अधिक जागता रहता है ।

17. युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।

हो योगी के हर काम में एतदाल,
ग़िजा और आराम में एतदाल ।
मुनासिब ही जाग और मनासिब ही ख़्वाब,
मिटाता है योग उसके दर्द-ओ इज़ाब ।।

शब्दार्थ– युक्ताहारविहारस्य–जिसका आहार तथा विहार नियमित है उसका; युक्तचेष्टस्य–जिसकी चेष्टायें नियमित हैं उसका; कर्मसु–कर्मों में; युक्तस्वप्नावबोधस्य–जिसका सोना तथा जागना नियमित है उसका; योगः–योगाभ्यास; भवति–होता है; दुःखहा–दुःख का हनन करने वाला ।

एतदाल–युक्त; ग़िज़ा–आहार; दर्द-ओ इज़ाब–दुःख ।

भावार्थ – जिसका आहार-विहार नियमित हो, जिसकी चेष्टायें नियमित हों, जिसका सोना-जागना नियमित हो, योग ऐसे व्यक्ति में इस प्रकार का अनुशासित जीवन भर देता है जिससे वह उसके दुःख दूर कर देता है ।

18. यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ।।

अगर उसके काबू में दायम हो मन,
फ़क्त आत्मा ही में कायम हो मन ।
रहे लज़्ज़त-ए नफ़्स से दूर दूर,
वो सरशार है योग में बिलज़रूर ।।

शब्दार्थ – यदा–जब; विनियतम्–विशेष तौर से नियत अर्थात् बन्धा हुआ, वश में किया हुआ; चित्तम–मन; आत्मनि–आत्मा में; एव–ही; अवतिष्ठते–ठहर जाता है, स्थित हो जाता है; निः-स्पृहः–इच्छा रहित; सर्वकामेभ्यः–सब कामनाओं से; युक्तः–योगयुक्त या ध्यानयुक्त; इति–यह; उच्यते–कहा जाता है; तदा–तब ।

दायम–सदा; फ़क्त-केवल; कायम–स्थित; लज़्ज़त-ए-नफ़्स–मानसिक विषय; सरशार–युक्त; बिलज़रूर–अवश्य ।

भावार्थ – जब अपने वश में किया हुआ चित्त केवल आत्मा में स्थित हो जाता है तब वह सब कामनाओं से इच्छा रहित हो जाता उसे किसी कामना की आकांक्षा नहीं रहती । ऐसे व्यक्ति को ध्यान योगी कहा जाता है क्योंकि वह योग में सुस्थिर हो जाता है ।

19. यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ।।

हवा की न हो मौज जुम्बा की रौ,
तो लरज़े कहाँ शमा रोशन की लौ।
यू हीं होगा योगी को हासिल सबात,
ख़्याल उसके बस में तो मन मैहव-ए ज़ात।।

शब्दार्थ – यथा–जैसे; दीपः–दीपक; निवातस्थः–वायुरहित स्थान में पड़ा हुआ; इंगते–चेष्टा करता है, काँपता है; सा–वह; उपमा–उपमा; स्मृता–कही गई है; योगिनः–योगी की; यतचित्तस्य–चित्त को वश में कर लिया है जिसने उसकी; युञ्जतः–जुड़े हुए; योगम्–ध्यानयोग में; आत्मनः–आत्मा के।

जुम्बाँ–डुलाने वाली गति; लरज़े–हिलना; शमाँ–प्रज्वलित दीपक; लौ–ज्योति; सबात–टिकाओ; ख़्याल–विचार; महब-ए ज़ात–आत्मा में तल्लीन।

भावार्थ – जिस प्रकार वायुरहित सुरक्षित स्थान में रखा हुआ दीपक हिलता डुलता नहीं उसी प्रकार योगी का मन वश में होता है, वह आत्मतत्त्व के ध्यान में सदा स्थिर रहता है।

20. यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।।

जहाँ मन को आये सकूँ-ओ करार,
रियाज़त करे दिल का दूर इन्तशार।
जहाँ मन में ही आत्मा का ज़हूर,
करे मुत्मैयन आत्मा का सरूर।।

शब्दार्थ – यत्र–जहाँ; उपरमते–उपराम को पा जाता है; चित्तम्–मन; निरुद्धम्–निरुद्ध हुआ; योगसेवया–योग के अभ्यास द्वारा; यत्र–जहाँ; च–और; एव–ही; आत्मना–आत्मा के द्वारा; आत्मानम्–परमात्मा को; पश्यन्–देखकर, पहचान कर; आत्मनि–अपने में; तुष्यति–सन्तोष पाता है।

रियाज़त–तप; इन्तशार–विक्षेपता; ज़हूर–अनुभव; मत्मैयन–तृप्त; सरूर–आनन्द।

भावार्थ – जिस अवस्था में पहुँचकर, योग अभ्यास द्वारा, चित्त निरुद्ध और मंजिल को पा जाता है, जिस अवस्था में आत्मा के द्वारा ही परमात्मा को पहचान कर अपने में सन्तोष पा लेता है।

21. सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ।।

जहाँ बे-निहायत हो राहत नसीब,
हिस्सो से बईद और खिरद के करीब ।
जहाँ हो हक़ीक़त से इन्साँ न दूर,
रहे आत्मा में क्याम-ओ सरूर ।।

शब्दार्थ – सुखम्–सुख को; आत्यन्तिकम्–अत्यन्त; यत्–जो; तत्–वह; बुद्धिग्राह्यम्–बुद्धि से प्राप्त होने वाला; अतीन्द्रियम्–दिव्य; वेत्ति–जानता है; यत्र–जहाँ; च–और; एव–ही; अयम्–यह; स्थितः–स्थिर होकर; चलति–चलायमान है; तत्त्वतः–सत्य से ।
बे-निहायत–अत्यन्त; नसीब–प्राप्त; हिस्सों–इन्द्रियों; बईद–परे; खिरद–बुद्धि; करीब–निकट; हक़ीक़त–तत्व; क्याम–स्थित ।

भावार्थ – जिस अवस्था में पहुँचकर इन्द्रियों की ग्रहण शक्ति से परे बुद्धि ग्राह्य परम सुख को अनुभव करता है और जिस अवस्था में स्थित होकर यह अपने तत्त्वज्ञान से चलायमान नहीं होता स्थिर रहता है ।

22. यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।।

जहाँ उसको मिलने से आये यकीं,
कि दौलत कोई इससे बढ़ कर नहीं ।
जहाँ उसमें जम कर वो आ जाये सुख,
कि जुम्बशे न दे उसको दुनियाँ का दुःख ।।

शब्दार्थ – यम्–जिसको; लब्ध्वा–प्राप्त होकर; च–और; अपरम्–दूसरा; लाभम्–लाभ; मन्यते–मानता है; अधिकम्–अधिक; ततः–उससे; यस्मिन्–जिसमें; स्थितः–स्थित हुआ; दुःखेन–दुःख से; गुरुणा–बड़े भारी से; अपि–भी; विचाल्यते–विचलित होता है ।
यकीं–पूर्ण विश्वास; जुम्बश–डुलाना ।

भावार्थ – जिसे पा जाने पर यह समझता है कि इससे बड़ा दूसरा कोई लाभ नहीं है और जिसमें स्थित हो जाने पर मनुष्य बड़े-से-बड़े दुःख से भी विचलति नहीं होता ।

23. तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।।

जहाँ ग़म है बाकी न कुछ सोग है,
यही योग है, हाँ यही योग है।
इसी योग में दिल यकीं से जमाओ,
इसी योग से तुम अक़ीदत दिखाओ।।

शब्दार्थ – तम्–उसको; विद्यात्–समझे; दुःखसंयोगवियोगम्–दुःख के साथ जो हमारा साथ है उससे रहित; योगसंज्ञितम्–योग में समाधि कहलाने वाला; सः–वह; निश्चयेन–निश्चय से; योक्तव्यः–करना चाहिये; अनिर्विण्णचेतसा– विचलित हुए बिना।
यकीं–विश्वास; अक़ीदत–श्रद्धा।

भावार्थ – दुःख के साथ जो हमारा संयोग है उससे अलग हो जाना–'दुःख-संयोग का और वियोग का नाम योग है'। व्यक्ति को चाहिये कि संकल्प व श्रद्धा के साथ योगाभ्यास में लगे और अपने पथ से विचलित न हो।

24. संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।।

ख़्यालों की औलाद हिर्स-ओ हवा,
इन्हें यक-कलम दूर करता हुआ।
हवास अपने हर सिम्मत से घेर कर,
दिली ज़ब्त से उनका रुख फेर कर।।

शब्दार्थ – संकल्पप्रभवान्–संकल्प से उत्पन्न होने वाली; कामान्–कामनाओं को; त्यक्त्वा–छोड़ कर; सर्वान्–सबको; अशेषतः–जो शेष न रहे ऐसी सर्वथा; मनसा–मन से; एव–ही; इन्द्रियग्राममम्–इन्द्रियों के समूह को; विनियम्य–वश में करके; समन्ततः–सब ओर से।
हिर्स–लोभ; हवा–अहंकार; यक-कलम–एकदम; हवास–इन्द्रियाँ; सिम्मत–ओर।

भावार्थ – संकल्प से उत्पन्न होने वाली फल की सब कामनाओं का पूर्ण रूप से त्याग करके इस प्रकार मन से ही सब इन्द्रियों की काम वासना को वश में करे।

25. शनैः शनैरुपरमेद्बुद्धया धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।।

जिसे अक़्ल पर अपनी हो इख्त्यार,
वो हासिल करे रफ़्ता-रफ़्ता करार।
करे उसका मन आत्मा में क्याम,
न उसको ख्याल-ए दुई से हो काम।।

शब्दार्थ – शनैः-शनैः–धीरे-धीरे; उपरमेत्–निवृत रहे; बुद्धया–बुद्धि से; धृतिगृहीतया–विश्वासपूर्वक; आत्मसंस्थम्–आत्मा में स्थित; कृत्वा–करके; किंचित्–कुछ; अपि–भी; चिन्तयेत्–सोचे।
इख़त्यार–काबू; हासिल–प्राप्त; रफ़्ता-रफ़्ता–धीरे-धीरे; करार–शान्ति; क्याम–स्थिति; ख्याल-ए दुई–द्वैत।

भावार्थ – धैर्ययुक्त बुद्धि से धीरे-धीरे शान्ति प्राप्त करें और मन को आत्मा में ही स्थित करके अन्य कुछ भी नहीं सोचना चाहिये अर्थात् शून्यता में चले जाएं।

26. यतो यतो निश्चलति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

मन इन्साँ का चंचल है और बे-करार,
रहे दौड़ता भागता बार-बार।
यह भागे तो बाग इसकी झट मोड़ दे,
हिफ़ाज़त में फिर रूह की छोड़ दे।।

शब्दार्थ – यतः यतः–जहाँ-जहाँ से; निश्चलति–भाग जाता है; चंचलम्–चंचल; अस्थिरम्–अस्थिर; ततः ततः–वहाँ-वहाँ से; नियम्य– वश में करके, रोककर; एतत्–यह, इसको; आत्मनि–आत्मा में; एव–ही; वशम्–वश में; नयेत्–ले आये।
बे-करार–बेचैन; हिफ़ाज़त–रक्षा; रूह–आत्मा।

भावार्थ – मन अपनी चंचलता एवं अस्थिरता के कारण जहाँ कहीं भी विचरण करता हो, व्यक्ति को चाहिये कि उसे वहाँ से खींच कर अपने आत्मा को वश में करले।

27. प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।।

वो योगी जिसे मन में आये सकूँ,
रजोगुण से दिल जिसका पाये सकूँ।
ख़ुदा से हो वासिल गुनाहों से दूर,
उसी को मुयस्सर हो आला-सरूर।।

शब्दार्थ – प्रशान्तमनसम्–जिसका मन भलीभाँति शान्त हो गया है; हि–निश्चय से; एनम्–इसको; योगिनम्–योगी को; सुखम्–सुख; उत्तमम्–उत्तम; उपैति–प्राप्त होता है; शान्तरजसम्–शान्त हो गया है राजसिक विकार जिसका; ब्रह्मभूतम्–जो ब्रह्म के साथ एक हो गया है; अकल्मषम्–जो निष्पाप है ।
सकूँ–शान्ति; वासिल–प्राप्त; गुनाहों–पापों; मुयस्सर–प्राप्त, आला-सरूर–परम आनन्द ।

भावार्थ – इस प्रकार के योगी को जिसका मन भली-भाँति शान्त हो गया है, जिसके मन के राजसिक अथवा रजोगुण के विचार शान्त हो गये हैं, जो ब्रह्मभूत–परमात्मा के साथ एक हो गया है, जो निष्पाप है जिसे फल प्राप्ति की कोई इच्छा नहीं, उसे उत्तम सुख प्राप्त होता है ।

28. युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।।

जो योगी रहे योग में उस्तवार,
गुनाहों से दामन न हो दाग़दार।
उसी को मिले नेमत-ए बीकराँ,
कि पाये वसाल-ए ख़दाये जहाँ।।

शब्दार्थ – युञ्जन्–लगाता हुआ; एवम्–इस प्रकार; सदा–सदा; आत्मानम्–आत्मा को; विगतकल्मषः–जिसके पाप दूर हो गये हैं; सुखेन–सरलता से; ब्रह्मसंस्पर्शम्–ब्रह्म-प्राप्ति से उत्पन्न को; अत्यन्तम्–अत्यन्त; सुखम्–सुख; अश्नुते–अनुभव करता है ।
उस्तवार–लगा हुआ; दामन–मन; दाग़दार–कलंकित; नेमत-ए बीकराँ–असीम सुख; वसाल-ए ख़ुदा–ईश्वर प्राप्ति ।

भावार्थ – इस प्रकार वह पापरहित योगी अपने आपको योगाभ्यास में निरन्तर आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति करके अनन्त आनन्द का अनुभव करता है ।

29. सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

अगर योग में नफ़्स सरशार है,
तो फिर यह हक़ीक़त नमूदार है।
कि हर शय में है आत्मा की नमूद,
तो हर शय का है आत्मा में वजूद।।

शब्दार्थ – सर्वभूतस्थम्–सब प्राणियों में स्थित को; आत्मानम्–आत्मा को, अपने को; ईक्षते–देखता है; योगयुक्तात्मा–योगयुक्त व्यक्ति; सर्वत्र–सब जगह; समदर्शनः–सम-भाव से देखने वाला, समदर्शी।

नफ़्स–मन; सरशार–युक्त; हक़ीक़त–सत्यता; नमूदार–प्रगट; नमूद–अस्तित्व; वजूद–सत्ता।

भावार्थ – सर्वत्र सम-भाव से देखने वाला योगयुक्त व्यक्ति सब प्राणियों में अपने को और अपने में सब प्राणियों के दुःख का अनुभव करता है।

30. यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

जो हर सिम्मत पाता है मेरा ही नूर,
मुझी में जो हर शय का देखे ज़हूर।
कभी मुझ से मुँह मोड़ सकता नहीं,
कभी मैं उसे छोड़ सकता नहीं।।

शब्दार्थ– यः–जो; माम्–मुझे; पश्यति–देखता है; सर्वत्र–सब जगह; सर्वम्–सब को; च–और; मयि–मुझ में; तस्य–उसके लिये; अहम्–मैं; प्रणश्यामि–नष्ट होता हूँ; सः–वह; च–और; मे–मेरे लिये; प्रणश्यति–नष्ट होता है।

नूर–ज्योति; ज़हूर–प्रकट।

भावार्थ – जो मुझे सब जगह देखते हैं और सब वस्तुओं को मुझ में देखते हैं वे मेरी दृष्टि से ओझल नहीं होते और मैं उनकी दृष्टि से ओझल नहीं होता।

31. सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।

जो कसरत में वाहदत का देखे समाँ,
जो पूजे मुझे हूँ जो सब में अयाँ।
वो योगी रहे गो किसी ढंग में,
मुझी से हो वासिल वो हर रंग में।।

शब्दार्थ– सर्वभूतस्थितम्–सब प्राणियों में स्थित रहने वाले को; यः–जो; माम्–मुझे; भजति–भक्तिपूर्वक सेवा करता है; एकत्वम्–एकत्व बुद्धि में; आस्थितः–स्थित हुआ; सर्वथा–सब तरह से; वर्तमानः–बरतता हुआ; अपि–भी; सः–वह; योगी–योगी; मयि–मुझ में; वर्तते–बरतता है।
कसरत–नानात्व; वाहदत–एकत्व; समाँ–दृश्य; अयाँ–प्रगट; वासिल–प्राप्त।

भावार्थ – प्राणिमात्र को सुख दुःख का अनुभव एक सा होता है, जो एकत्व में स्थित होकर सब प्राणियों में स्थित रहने वाले ईश्वर की उपासना करता है वह हर प्रकार से ईश्वर पर आश्रित रहता है।

32. आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।
सुख औरों का समझे जो अपना ही सुख,
दुःख औरों का समझे जो अपना ही दुःख।
जो सब को करे अपने जैसा ख्याल,
सुन अर्जुन कि योगी है वो बाकमाल।।

शब्दार्थ– आत्मौपम्येन–अपनी उपमा से, अपने सादृश्य से; सर्वत्र–सब तरफ; समम्–सम-भाव से; पश्यति–देखता है; यः–जो; सुखम्–सुख; वा–या; दुःखम्–दुःख; सः–वह; मतः–समझा जाता है, माना जाता है।
बाकमाल–श्रेष्ठ।

भावार्थ– हे अर्जुन! वह पूर्णयोगी है जो अपनी तुलना से सारे प्राणियों की उनके सुख व दुःख में वास्तविक समानता के दर्शन करता है और सबको आत्मवत् जानता है।

33. योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम्।।

सकूँ का जो मुझको सिखाया है योग,
मेरे दिल को भगवान भाया है योग।
बिना इसकी लेकिन नहीं मुस्तकिल,
कि चंचल है, चंचल है, चंचल है दिल।।

शब्दार्थ– यः–जो; अयम्–यह; त्वया–तूने; प्रोक्तः–कहा है; साम्येन–सम-बुद्धि के रूप में; मधुसूदन–हे कृष्ण! एतस्य–इसका; अहम्–मैं; पश्यामि–देखता हूँ; चंचलत्वात्–चंचल होने से; स्थितिम्–स्थिति को; स्थिराम्–स्थायी को।
सकूं–समता; बिना–आधार; मुस्तकिल–स्थायी।

भावार्थ – अर्जुन ने कहा–हे कृष्ण! जो यह आपने समभाव से कहा है, बुद्धि-योग- बतलाया है। मन में चंचलता होने से इसकी नित्य स्थिति राग द्वेष के कारण बदलती रहती है, मुझे तो इस योग की स्थिति डावांडोल प्रतीत होती है।

34. चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

यह भगवान! बेकल है पुरशोर दिल,
कि सरकश है, जिद्दी है, मुँह ज़ोर दिल।
न काबू में आये किसी हाल में,
हवा बन्द होती नहीं जाल में।।

शब्दार्थ– चंचलम्–चंचल; हि–निश्चय से; प्रमाथि–मथ डालने वाला; बलवत्–बलवान्; दृढ़म्–हठी; तस्य–उसका; अहम्–मैं; निग्रहम्–निग्रह, वश; मन्ये–मानता हूँ; वायोः–वायु के; इव–तरह; सुदुष्करम्–अति दुष्कर, कठिन।
बेकल–चंचल; सरकश–प्रमाथि।

भावार्थ – हे कृष्ण! मन बड़ा चंचल, बलवान्, हठी है। मैं तो मानता हूँ कि इसको वश में करना वायु को वश में करने से भी अधिक कठिन है।

35. असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहे चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

कहा सुन के भगवान् ने ऐ कवि!
दिल इन्साँ का पुरशोर चंचल सही।
है मश्क और विराग में यह कमाल,
दिल आ जाये काबू में कुन्ती के लाल।।

शब्दार्थ– असंशयम्–निस्सन्देह; महाबाहो–हे अर्जुन; दुर्निग्रहम्–कठिन, वश करना है जिसका; चलम्–चंचल; अभ्यासेन–अभ्यास से; तु–तो; कौन्तेय–हे कुन्ती के पुत्र अर्जुन; वैराग्येण–वैराग्य से; च–और; गृह्यते–पकड़ा जाता है, वश में किया जाता है।

कवि–अर्जुन; मश्क–अभ्यास।

भावार्थ – हे अर्जुन! मन चंचल है और इसको वश में करना निस्सन्देह बड़ा कठिन है, परन्तु हे अर्जुन! यह अभ्यास तथा वैराग्य से वश में किया जा सकता है।

36. असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।

अगर नफ़्स पर ज़ब्त कामल नहीं,
तो फिर योग इन्साँ को हासिल नहीं।
मगर नफ़्स पर हो जिसे इख्त्यार,
मुनासिब वसायल से हो कामगार।।

शब्दार्थ– असंयतात्मना–जिसने अपने-आपको वश में नहीं किया; दुष्प्रापः–प्राप्त कर सकना कठिन है; इति–यह; मे–मेरा; मतिः–मत है; वश्यात्मना–जिसने स्वयं को वश में कर लिया है; तु–तो; यतता–यत्न के द्वारा; शक्यः–हो सकता है, सम्भव है; अवाप्तुम्–प्राप्त करने को; उपायतः–उपयुक्त साधनों द्वारा।

नफ़्स–मन; ज़ब्त–पूर्ण निग्रह; हासिल–प्राप्त; इख़्त्यार–काबू; मुनासिब–उचित; बसायल–साधन; कामगार–सिद्ध।

भावार्थ – जिसने स्वयं को वश में नहीं किया उसके लिये योग को प्राप्त कर सकना अत्यन्त कठिन है–ऐसा मेरा मत है, परन्तु जिसने स्वयं को प्रयत्न के द्वारा वश में कर लिया है वह उपायों द्वारा योग को प्राप्त कर सकता है।

37. अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।।

फिर अर्जुन ने पूछा भटकता है जो,
इसी राह में सिर पटकता है जो।
अक़ीदत तो है जाँफ़शानी नहीं,
अक़ीदत से पहुँचेगा वो भी कहीं।।

शब्दार्थ– अयतिः–असफल योगी; श्रद्धया–श्रद्धा से; उपेतः–लगा हुआ; योगात्–योग मार्ग से; चलितमानसः–मन विचलित हो गया जिसका वह; अप्राप्य–न पाकर; योगसंसिद्धिम्–योग की सिद्धि को; काम्–किस; गतिम्–गति को; गच्छति–जाता है, प्राप्त करता है।
अक़ीदत–श्रद्धा; जांफशानी–तत्परता।

भावार्थ– हे कृष्ण! यदि कोई श्रद्धा से युक्त साधक योग-मार्ग पर चल पड़ा, परन्तु यत्न पूरा न होने के कारण उसका मन योग से विचलित हो गया, वह योग भ्रष्ट हो गया और वह योग की सिद्धि को, योग के उद्देश्य को न पा सका, तो वह किस गति को प्राप्त करता है?

38. कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि।।

कवि-दस्त! जो मोह में फँस गया,
राह-ए हक़ में जो डगमगाता रहा।
तो क्या वो यहाँ और वहाँ से गया,
जो बादल फटा आसमाँ से गया?

शब्दार्थ– कच्चित्–कहीं; उभयाविभ्रष्टः–दोनों ओर से भ्रष्ट हुआ; छिन्नाभ्रम्–छिन्न-भिन्न बादल की; इव–तरह; नश्यति–नष्ट हो जाता है; अप्रतिष्ठः–कहीं न टिका हुआ; महाबाहो–हे कृष्ण; विमूढः–किंकर्तव्यविमूढ; ब्रह्मणः–ब्रह्म-प्राप्ति के; पथि–मार्ग में।
कवि-दस्त–महाबाहो; राह-ए हक़–परमार्थ के मार्ग में, यहाँ–लोक; वहाँ–परलोक।

भावार्थ – हे महाबाहु कृष्ण! क्या वह परमात्मा के मार्ग में भटका हुआ व आश्रयरहित व्यक्ति छिन्न-भिन्न बादल की भाँति दोनों ओर से नष्ट तो नहीं हो जाता?

39. एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते।।

करें मेरे इस शक को भगवान् दूर,
तबीयत को हासिल हो उरफ़ाँ का नूर।
कोई दूसरा है जहाँ में कहाँ,
करे दूर मेरे जो वहम-ओ गुमाँ।।

शब्दार्थ– एतत्–यह है, इस; मे–मेरे; संशयम्–संशय को; छेत्तुम–छिन्न-भिन्न करने को; अर्हसि–प्रार्थना है; अशेषतः–बिल्कुल; त्वद्–तुझ से; अन्यः–भिन्न, तेरे बिना, दूसरा; संशयस्य–संशय से; अस्य–इसके; छेत्ता–दूर करने वाला; हि–निश्चय से; उपपद्यते–मिल सकता है।

तबीयत–मन; हासिल–प्राप्त; उरफाँ–ज्ञान; नूर–ज्योति; वहम-ओ गुमाँ–संशय।

भावार्थ – हे कृष्ण! इस मेरे संशय को तू बिल्कुल दूर कर सकता है। तेरे बिना अन्य कोई इस संशय को दूर करने वाला नहीं मिल सकता है।

40. पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।।

सुन ऐ प्यारे अर्जुन वो इन्सान भी,
न दोनों जहाँ में फ़ना हो कभी।
कि दुनियाँ में जो नेक करदार है, ।
तबाही में कब वो गिरफ़्तार है।।

शब्दार्थ– पार्थ–हे अर्जुन; एव–ही; इह–यहाँ; अमुत्र–वहाँ; विनाशः–विनाश; तस्य–उसका; विद्यते–होता है; हि–निश्चय से; कल्याणकृत्–कल्याण-कार्य करने वाला; कश्चित्–कोई भी; दुर्गतिम्–दुर्गति को; तात– हे प्रिय स्नेह-पात्र; गच्छति–जाता है, प्राप्त करता है।

फ़ना–विनाश; नेक–सुकर्मों; तबाही–दुर्गति; गिरफ़्तार–ग्रस्त।

भावार्थ – श्री कृष्ण ने कहा–ऐसे व्यक्ति का विनाश न तो यहाँ होता है, न वहाँ ? हे तात् ! हे मित्र ! भलाई करने वाला व्यक्ति कभी भी किसी की बुराई से पराजित नहीं होता ।

41. प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।

यह सच है उसे योग हासिल नहीं,
हो नेकों की दुनियाँ में जा कर मकीं ।
बहुत मुद्दतों में वो ले फिर जनम,
वहाँ हों जहाँ नेकी-ओ ज़र बहम ।।

शब्दार्थ– प्राप्य–पाकर; पुण्यकृताम्–पुण्य करने वालों के; लोकान्–लोकों को; उषित्वा–निवास करके; शाश्वतीः–अनेक; समाः–वर्ष; शुचीनाम्–शुद्ध आचरण वालों के; श्रीमताम्–श्रीमानों के; गेहे–घर में; योगभ्रष्टः–योग से डिगा हुआ; अभिजायते–जन्म होता है ।

हासिल–प्राप्त; नेकीं की दुनियाँ–पुण्य लोक; मकीं–निवास; नेकी–भले कर्म; ज़र–लक्ष्मी; बहम–इकट्ठे ।

भावार्थ – जिस स्थान को पुण्यशाली लोग पाते हैं उसे पाकर, वहाँ बहुत समय तक रहने के उपरान्त वह योगभ्रष्ट, पवित्र और श्रीमान् लोगों के घर में निवास करता है ।

42. अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।।

वो हो वरना ऐसे घराने का लाल,
हों योगी जहाँ आक्ल-ओ बाकमाल ।
जनम ऐसा मुश्किल मिले ऐ हबीब,
सआदत यह हो शाज़-ओ नादर नसीब ।।

शब्दार्थ– योगिनाम्–योगियों के; एव–ही; कुले–कुल में; भवति–होता है; धीमताम्–बुद्धिमानों के; एतत्–यह; हि–निश्चय से; दुर्लभतरम्–अधिक दुर्लभ है; लोके–लोक में; यत्–जो; ईदृशम्–ऐसा ।

आक्ल-ओ बाकमाल–बुद्धिमानों में श्रेष्ठ; हबीब–मित्र; सआदत–सुअवसर; शाज़-ओ नादर–बहुत कम; नसीब–प्राप्त ।

भावार्थ – अथवा, वह बुद्धिमान् योगियों के कुल में ही जन्म लेता है । श्रीमान् लोगों के स्थान में योगियों के कुल में ही जो जन्म लेना है निश्चय ही इस संसार में ऐसा जन्म दुर्लभ है ।

43. तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ।।

वो दुनियाँ में पाये जो ताज़ा हैयात,
हों सब उसमें पिछले जनम के सफ़ात ।
करे बढ़ के पहले से कस्ब-ए कमाल,
कि तकमील हासिल हो जाये ज़वाल ।।

शब्दार्थ– तत्र–वहाँ; तम्–उसको; बुद्धिसंयोगम्–बुद्धि के संस्कारों को; लभते–प्राप्त करता है; पौर्वदेहिकम्–पूर्वजन्म के; यतते–यत्न करता है; च–और; ततः–वहाँ से; भूयः–फिर; संसिद्धौ–मोक्ष पाने में; कुरुनन्दन–हे अर्जुन ।

ताज़ा हैयात–नवजीवन; सफ़ात–शुभ संस्कार; कस्ब-ए कमाल–अधिक पुरुषार्थ, तक़मील–सिद्धि; हासिल–प्राप्त; ज़वाल–पतन ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! वहाँ वह पूर्वजन्म के बुद्धि-संयोग को (संस्कारों को) फिर पा जाता है और (जहाँ से पहले छोड़ा था) वहाँ से फिर मोक्ष पाने के लिये यत्न करता है ।

44. पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।।

इसी साबका मश्क के ज़ोर से,
वो मक्सूद की सिम्मत बहता चले ।
हुआ योग का इल्म जिसको पसन्द,
वो लिखे से वेदों के जाये बलन्द ।।

शब्दार्थ– पूर्वाभ्यासेन–पिछले जन्म के अभ्यास से; तेन–उससे; एव–ही; ह्रियते–आकर्षित होता है; हि–निश्चय से;

अवशः–विवश; अपि–भी; सः–वह; अपि–भी; योगस्य–योग-मार्ग का; शब्दब्रह्म–जिस ब्रह्म की केवल शाब्दिक चर्चा है उसे; अतिवर्तते–उल्लंघन करता है।

साबका–पूर्वले; मश्क–अभ्यास; मक्सूद–उद्देश्य; सिम्मत–और।

भावार्थ – अपने पूर्व जन्म के अभ्यास से वह न चाहते हुए भी स्वतः योग के नियमों की ओर आकर्षित होता है। ऐसा जिज्ञासु शास्त्रों के अनुष्ठानों से परे स्थित होता है।

45. प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।

किये जा रहा है जो योगी यतन,
तो पापों से हो पाक-साफ़ उसका मन।
जनम पर जनम ले के पाये कमाल,
कि हासिल हो आखिर ख़ुदा का वसाल।।

शब्दार्थ– प्रयत्नात्–प्रयत्न से; यतमानः–परिश्रम करता हुआ; तु–तो; संशुद्धकिल्बिषः–पाप से शुद्ध होकर; अनेक-जन्मसंसिद्धः–जन्म-जन्मान्तरों में अपने को पूर्ण बनाया है जिसने; ततः–वहाँ से आगे; याति–जाता है, प्राप्त करता है; पराम्–परम; गतिम्–गन्तव्य को।

कमाल–सिद्धि; वसाल–प्राप्त।

भावार्थ – वहाँ से आगे, प्रयत्न से योग के लिये परिश्रम करता हुआ योगी पाप से छूटकर अनेक जन्म-जन्मान्तरों में अपने आपको पूर्ण बनाता हुआ परम गन्तव्य को प्राप्त होता है।

46. तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

तपस्वी से आला है योगी की शान,
बड़ी उसकी ज्ञानी से भी आन-बान।
हैं कम उससे जो कर्मकाडी हैं लोग,
फिर अर्जुन है क्या देर ले तू भी योग।।

शब्दार्थ– तपस्विभ्यः–तपस्वियों से; अधिकः–बड़ा; ज्ञानिभ्यः–ज्ञानियों से; अपि–भी; मतः–माना जाता है; अधिकः–बड़ा; कर्मिभ्यः–कर्मकाण्डियों से; च–और; अधिक–बड़ा; तस्मात्–इसलिये; भव–हो जा; अर्जुन–हे अर्जुन।

भावार्थ – योगी तपस्वियों से, ज्ञानियों से, कर्मकाण्डियों से भी बड़ा है, इसलिये हे अर्जुन! तू सब प्रकार से योगी हो जा।

47. योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।

वो योगी यक़ीं जो मुझी पर जमाये,
मुझी में फ़कत आत्मा को लगाये।
जो मेरी परस्तश में शाग़ल रहे,
वो सब योग वालों में कामल रहे।।

शब्दार्थ– योगिनाम्–योगियों में; अपि–भी; सर्वेषाम्–सब में; मद्गतेन–मेरे में गये हुए से; अन्तरात्मना–अन्तरात्मा से; श्रद्धावान्–श्रद्धावाला; भजते–भजन करता है; यः–जो; माम्–मुझे; सः–वह; मे–मेरा; युक्ततमः–परम योगी मतः–मानने योग्य है।

यक़ीं–श्रद्धा; फ़कत–केवल; आत्मा–मन; परस्तश– उपासना; शाग़ल–युक्त; कामल–श्रेष्ठतम।

भावार्थ – सारे योगियों में भी जो श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुये अंतरात्मा से मुझको निरंतर भजता है। वह योगी मुझे सर्वश्रेष्ठ मान्य है।